॥ श्रीजानकीवल्लभाभ्यां नमः ॥

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥ ॥ श्रीमद्वेदान्तदेशिकाय नमः ॥

देशिक चरितामृतम्

(''हिन्दी'' भावार्थ सहित श्री रघुवीर गद्यम्)

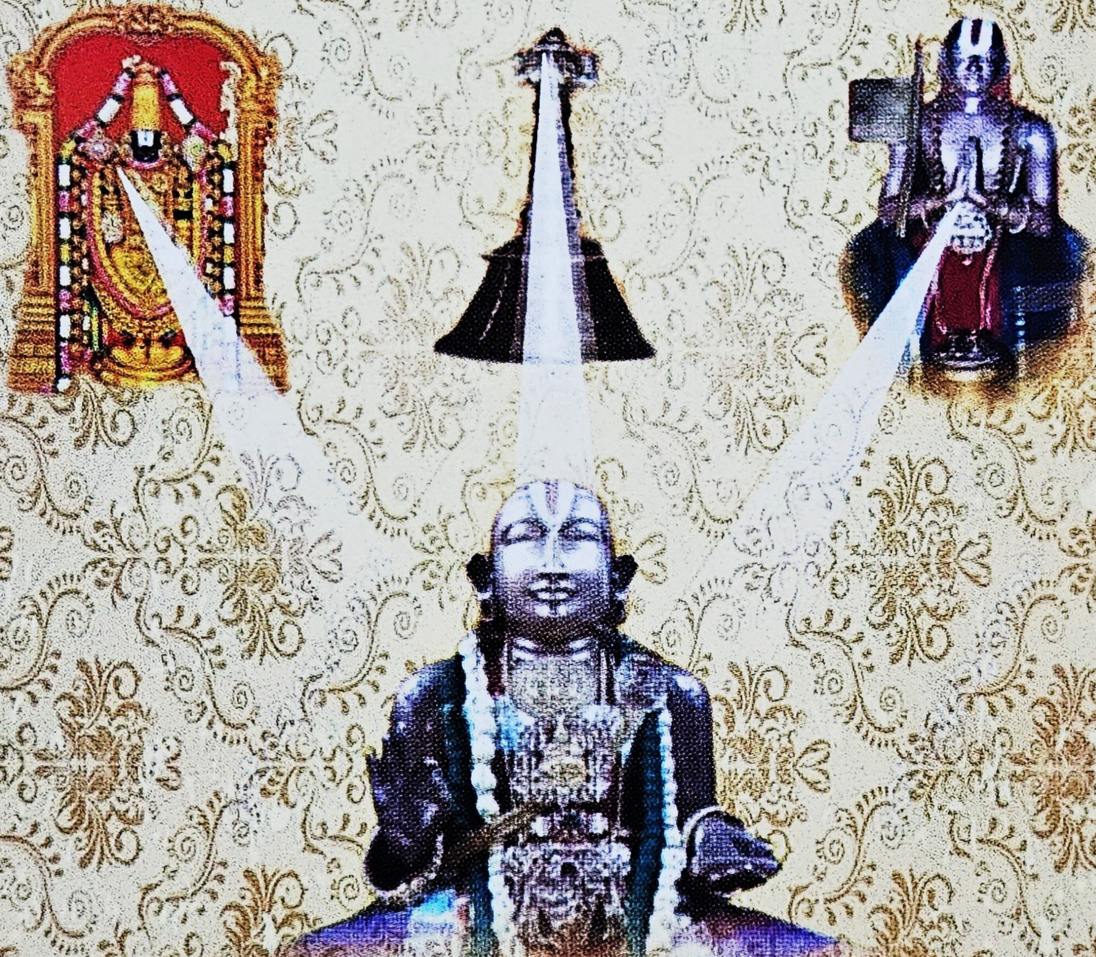

लेखक : भगवत् भागवत दासानुदास

स्वामी श्री देवनायकाचार्य

श्री वेदान्तदेशिक मण्डपम्, श्रीधाम वृन्दावन

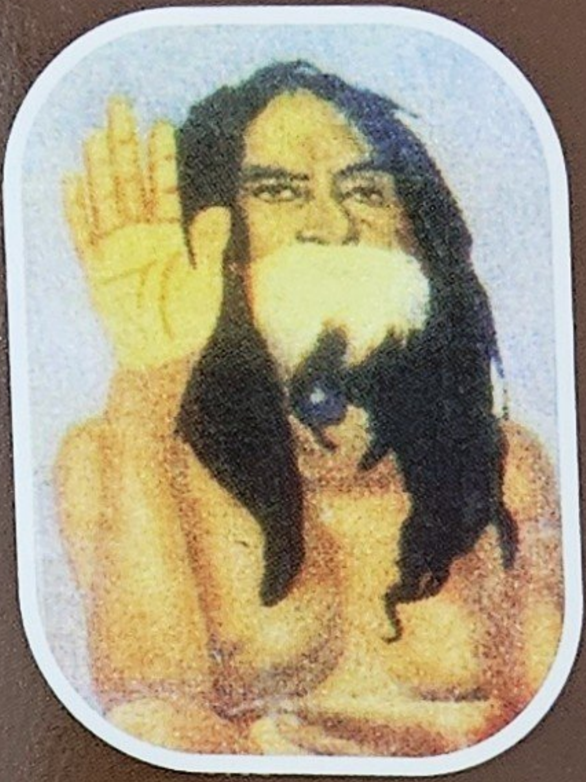

योगी सम्राट ब्रह्मर्षि

श्री देवराहा बाबा

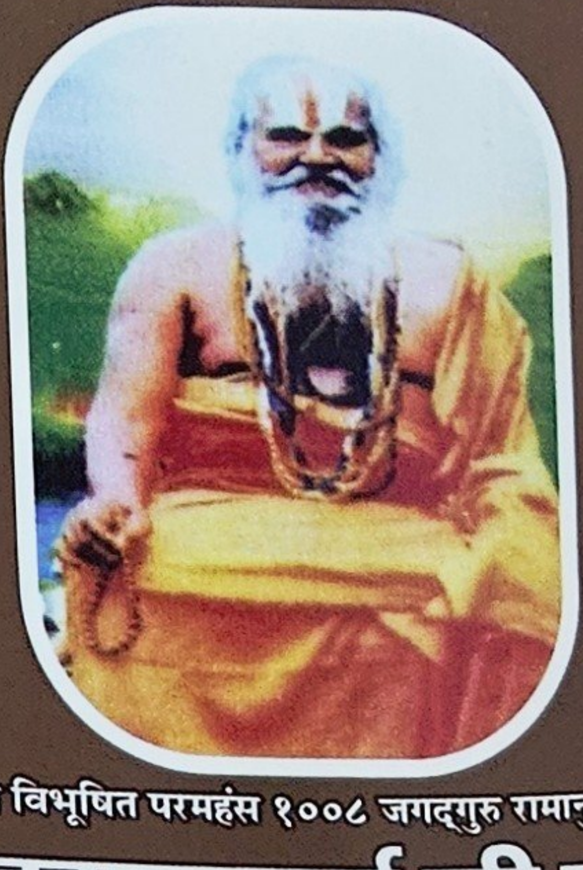

अनन्त श्री विभूषित परमहंस १००८ जगद्गुरु रामानुजाचार्य श्री

भगवानदासाचार्य जी महाराज

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीमतेरामनुजाय नमः ॥

देशिक चरितामृतम्

लेखक :
भगवत् भागवत दासानुदास
स्वामी श्री देवनायकाचार्य जी
(न्याय वेदान्ताचार्य)
वेदान्तदेशिक मण्डपम्, मोहिनी नगर कॉलौनी,
परिक्रमा मार्ग, वृन्दावन (मथुरा)
पिन– 281121

सम्पादक :
जगद्गुरु रामानुजाचार्य
स्वामी श्री अनिरुद्धाचार्य जी महाराज
श्री वेदान्तदेशिक पीठ
श्रीजानकीवल्लभ मंदिर, केशीघाट, वृन्दावन

दूरभाष : 0565–2442349

श्रीः

प्राक्कथन

आप सभी धर्मानुरागियों को सूचित करते हुए परम हर्ष हो रहा है कि श्रीमद्वेदमार्ग प्रतिष्ठापनाचार्य, उभयवेदान्ताचार्य श्रीभगवद्रामानुजाचार्य सिद्धान्त निर्धारण सार्वभौम, वेदान्ताचार्य श्री वेंकटेश भगवान के पार्षद् रूप घण्टावतार श्री वेंकटनाथ (वेदान्त देशिक स्वामी जी) का वैभव लघु रूप में इस ग्रन्थ के माध्यम से प्रकाशित किया जा रहा है। एकवार मेरे आचार्यपाद ने स्वप्न में यह आदेश दिया कि लघु रूप में प्राणीमात्र के ज्ञानवर्धन हेतु तथा भक्ति की प्राप्ति हेतु आचार्य शिरमुकुट (वेदान्तदेशिक) के जीवन का प्रतिपादन करो। जब दूसरे दिन मैं अपने आचार्य **वेदान्देशिक पीठाधिपति ज.गु.रा. श्री स्वामी अनिरूद्धाचार्य** जी को यह बात बतायी तो उन्होंने मुझे आदेशित किया, तथा बताया कि मैं यह बात बहुत दिनों से हृदयस्थ विचार कर रहा हूँ। अतः भगवान की कृपा से यह कार्य शीघ्र ही करो। अतः इस ग्रन्थ को रचा गया कि सभी इसका लाभ ले सकें। मानवस्वभाववश गलतियां हुआ करती हैं इसलिये इसमें भी कोई गलती हुई हों। तो पत्राचार या दूरभाष के द्वारा सूचित करने की कृपा करें। इसी अभिलाषा के साथ

विनित :-

भगवत् भागवत दासानुदास

स्वामी श्री देवनायकाचार्य

(न्यायवेदान्ताचार्य)

1. स्वस्ति हस्तिगिरिमस्तशेखरस्संतनोतु मयि सन्ततं हरिः।
निस्समाभ्यधिकमभ्यधत्त यं देवमौपनिषदी सरस्वती ॥

2. गुरुभ्यस्तद्गुरुभ्यश्च नमोवाकमधीमहे।
वृणीमहे च तत्राद्यौ दम्पती जगतां पती ॥
मणिवर इव शौरेर्नित्यहृद्योऽपि जीवः
कलुषमतिरविन्दन् किङ्करत्वाधिराज्यम्।
विधिपरिणतिभेदाद्वीक्षितस्तेन काले
गुरूपरिषदुपज्ञं प्राप्य गोपायति स्वम् ॥

3. सन्तःश्रीरङ्गपृथ्वीशचरणत्राणशेखराः।
जयन्ति भुवनत्राणपदपङ्कजरेणवः ॥
भरताय परं नमोऽस्तु तस्मै प्रथमोदाहरणाय भक्तिभाजाम्।
यदुपज्ञमशेषतः पृथिव्यां प्रथितो राघवपादुकाप्रभावः ॥

4. उपवीतिनमूर्ध्वपुण्ड्रवन्तं त्रिजगत्पुण्यफलं त्रिदण्डहस्तम्।
शरणागतसार्थवाहमीडे शिखया शेखरिणं पतिं यतीनाम् ॥

5. भाद्रपदमासगतविष्णुविमलर्क्षे वेङ्कटमहीधपतितीर्थदिनभूते।
प्रादुरभवज्जगति दैत्यरिपुघण्टा हन्त
कवितार्किकमृगेन्द्रगुरुमूर्त्या ॥

6. अखिलभुवनरक्षासाधनायावतीर्णे
कुमतिकलिविलासध्वान्ततिग्मांशुजाले।
निरवधिकरुणाब्धौ वेदचूडागुरौ मे
भवतु परमभक्तिः सर्वतन्त्रस्वतन्त्रे ॥

7. रामानुजदयापात्रं ज्ञानवैराग्यभूषणम्।
श्रीमद्वेकटनाथार्यं वन्दे वेदान्तदेशिकम् ॥
लक्ष्मीनाथसमारम्भां नाथयामुनमध्यम
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥

श्रीः

कलयुग के कलुषित प्राणियों के कल्याण की कामना से अवतरित शेषावतार भाष्यकार अनन्त श्री स्वामी रामानुजाचार्य जी द्वारा चुने गये 84 सिंहासनाधिपतियों में से अनन्त श्री सोमया जी एक थे। जो विशुद्ध बैष्णव परम्परा का निर्वहन करते हुए कांचीपुरम् में रहते थे। उनका एक पुत्र था, जिसका नाम पुण्डरीकाक्ष था। इन्हीं पुण्डरीकाक्ष के पुत्र का नाम अनन्तसुरी था, जो सर्व शास्त्र मर्मज्ञ होने के साथ-साथ शास्त्रानुसार जीवन निर्वहन किया करते थे। एक दिन पुण्डरीकाक्ष ने अपने पुत्र अनन्त सूरी को विशेष रूप से देखा और उसके विवाह के बारे में विचार किया। तब अनन्त सूरी अप्पुलार के पास गये। अप्पुलार श्री आचार्यवर के मामा हैं और इन्हीं का नाम आत्रेयरामानुजाचार्य इनके पिता जी का नाम रङ्गाचार्य था ये अत्रिकुलोत्पन्न थे। अतः आत्रेयरामानुजाचार्य नाम से जाने जाते हैं ये बाल्यावस्था से बहुत चतुर तथा सकलविद्या पारङ्गत थे इनको देखकर बड़े लोग कहा करते थे कि ये पिल्लार (श्री कुरूकेश जी) हैं क्या तदनुसार उनका नाम अप्पिलार (तत्कुरेश) हो गया इनकी एक भगिनी थी जिसका नाम तोतारम्बा था। अतः विवाह के विचार से वह अप्पुलार के पास पहुचे, क्योंकि उनकी बहन तोतारम्बा अत्यंत सुशील और सद्गुणों से सम्पन्न थी। पुण्डरीकाक्ष ने अपने पुत्र के विवाह का प्रस्ताव अप्पुलार जी के समक्ष रखा। और चले आये। अप्पुलार ने जाकर भगवान् वरदराज के समक्ष यह प्रार्थना

प्रस्तुत की, कि मैं क्या करू? ,उसी रात भगवान् वरदराज ने अप्पुलार को स्वप्न में दर्शन देकर आदेश दिया कि वे विवाह के लिये अपनी सहमति प्रदान करें। और साथ यह भी कहा कि इस विवाह से (इनके घर) एक महान् आचार्य का जन्म होगा। जो अपने नियम और आचार-विचार से विश्व की भलाई करेंगे तथा उनके क्षेम के लिए काम करेंगे। भगवान् वरदराज के आदेश को शिरोधार्य करके अगली सुबह अप्पुलार पुण्डरीकाक्ष से मिलने को चल पड़े। पुण्डरीकाक्ष ने अतिथि सम्मान करने के पश्चात् आने का कारण पूछा तब अप्पुलार ने स्वप्न की सारी बातें पुण्डरीकाक्ष को बता दी। परिणामस्वरूप शुभ मुहुर्त में अनन्त सूरी और तोतारम्बा का विवाह हुआ। विवाहोपरान्त दोनों एक आदर्श गृहस्थ जीवन का पालन करने लगें।

एक दिन की बात है कि बातों ही बातों में तोतारम्बा ने अपने पति अनन्तसूरी से पुत्र प्राप्ति की इच्छा प्रकट की। अतः दोनों ने श्री भगवान से पुत्र प्राप्ति के लिये कामना की और तीर्थयात्रा प्रारम्भ कर दीये। अनेक तीथोर्जं, पवित्र नदियों तथा पावन पुष्करिणियों का सेवन किया तब अन्त में वे तिरूमला आए और स्वामी श्री पुष्करिणी में स्नान किया तथा पुष्करिणी के तट पर स्थित श्री भगवान् के दर्शन किये तथा उनकी आराध ाना की। फिर वे दम्पति भगवान श्रीनिवास के मंदिर गए उनकी षोडशोपचार पूजा की तथा अपने मन की इच्छा प्रकट करके नतमस्तक खड़े हो गए। बहुत देर तक यही अवस्था रही। इसी

प्रकार सायंकालीन पूजा अर्चना करके शुद्ध चित्त होकर अपनी सहधर्मिणी के साथ शयनकक्ष का सेवन किया। तब भगवान् निवास ने मध्यरात्रि (प्रत्युषकाल) में स्वप्न में अनन्तसूरी से कहा कि हे पुत्र! यह घण्टामणि लो। ये दिव्य शक्ति से परिपूर्ण है तथा मेरी सन्निधि की है। इसे अपनी सहधर्मिणी को खिला दो। समय आने पर एक अत्यन्त तेजस्वी पुत्र प्राप्त होगा। इसी प्रकार तोतारम्बा को भी स्वप्न दिया और यही सब कहा तोतोरम्बा को ऐसा महसूस हुआ कि वे घण्टामणि निगल गई हैं। उसी समय (प्रत्युषकाल) में दोनों युगल दम्पत्ति जागकर अपनी-अपनी बात एक दूसरे को बताने लगे और तत्पश्चात् अत्यन्त प्रसन्न हो गये।

प्रातः कालीन भगवत् आराधना के लिये अर्चक सन्निधि (गर्भगृह) में जब प्रवेश किया तब भगवान के सन्निधि में घण्टामणि नहीं था। क्योंकि वहां पर भगवान् की आराधना में सम्मिलित घण्टामणि नहीं है। अतः घण्टामणि के न होने की सूचना मंदिर के अधिकारियों की दी। मंदिर के अधिकारियों ने अर्चक (पुजारी) तथा सेवकों के ऊपर संदेह किया तथा संदेह के आधार पर उनसे पूछताछ होने लगी। संयोगवशात् उसी समय वहां श्री शैल स्वामी तिरुमलैनम्बी आये और अधिकारियों से कहा कि मुझे आज रात्री में स्वप्न आया कि घण्टामणि स्वयं भगवान् ने अपने एक भक्त-दम्पत्ति को दी है। अतः आप लोग मंदिर के अर्चक या सेवकों पर संदेह न करें। और न ही उनसे कोई पूछताछ की जाये। तब अधिकारियों ने इस बात को पुष्ट

करने हेतु अनन्तसूरी और उनकी पत्नि को भगवत् सन्निधि (मंदिर प्रांगण) में बुलाया। उन्होंने भी इस बात की पुष्टी की और अपनी आपबीती बताई। लेकिन फिर भी कुछ अधिकारियों का संशय दूर नही हुआ। तभी श्री शैल पूर्ण स्वामी भगवान् के पास ही अधिकारियों तथा सेवकों के सामने मूर्छित होकर गिर पड़े और कुछ समय पश्चात् जब चेतना आई तब स्वयं श्रीनिवास उनके शरीर में प्रविष्ट होकर बोल पड़े कि किसी पर भी संदेह करने की आवश्यकता नहीं है। "मैने स्वयं वह घण्टामणि अनन्तसूरी को दी थी। इसी घण्टा के रूप में इस दम्पत्ति के घर में मैं अवतार लूंगा और ऋषियों, सन्तो, पूर्वाचार्यों तथा आलवारों द्वारा बताए गए वैदिक सनातन धर्म की स्थापना करूंगा। आज से मेरी पूजा विना घण्टामणि के होगी"। परिणाम स्वरूप आज भी भगवान् के इस आदेश को प्रतिवद्धता के साथ पालन किया जाता है। मंदिर प्रांगण के बाहर केवल एक घण्टा लगा है, जिसको प्रसाद निवेदन काल में बजाया जाता है।

इसके बाद अनन्तसूरी अपनी पत्नी के साथ प्रसन्न होकर भगवान से विदाई ले, अपनी मात्रभूमि कांचीपुरम् आ गये। कालान्तर में भगवत् कृपा से तोतारम्बा गर्भवती हुई। जैसे-2 गर्भस्थ शिशु का विकास होने लगा वैसे-2 तोतारम्बा का मुखमण्डल कांतियुक्त हो गया। उनके मुख की वह दिव्य आभा को देखकर लोग नतमस्तक होने लगे तथा उनकी भावना भगवान् की ओर अभिमुख होने लगी। अतः लोग आपस में बात करने लगे कि तोतारम्बा का गर्भस्थ शिशु दिव्यात्मा है तथा वह समाज

को नई दिशा में ले जाने वाला होगा।

तोतारम्बा के गर्भस्थ शिशु पूरे 12 वर्ष गर्भिणी थी जैसे श्री पाराशर भगवान पूरे 12 वर्ष गर्भ में रहकर अवतीर्ण होकर लोक विलक्षण थे उसी प्रकार श्री भगवान ने घण्टा को पूरे 12 वर्ष तोतारम्बा के गर्भ में रखकर कलयुग के 4369 वें शुक्लवर्ष के भाद्रपदमास में शुक्लदशमी बुधवार समेत श्रवण नक्षत्र तमिल पञ्चाङ्ग के अनुसार विभाग वर्ष के पुरतसी महीना में श्रवण नक्षत्र (सितम्बर-अक्टूबर 1268) ई. जिस दिन होता है, वह भगवान् वेंकटेश को समर्पित होता है। इस विशेष उत्सव को ब्रह्मोत्सव (अवभृत उत्सव) के समापन के दिन किया जाता है। इसी दिन हजारों भक्त चाहे वे अमीर हों, या गरीब हों, बूढ़े हो या जवान हों या दूर के हो या निकट के हो, सब श्री पुष्करिणी में स्नान करते है और उत्सव मनाते हैं।

इसी क्रम में एक दिन तोतारम्बा ने एक दिव्य बालक को जन्म दिया। उस बालक के जात कर्म के पश्चात् उसका नाम वेंकटनाथ रखा गया। वास्तव में वह बालक भगवान् वेंकटेश की कृपा से प्राप्त हुआ था। अतः उसका नाम उन्हीं के नाम पर रखा गया। आश्चर्य की बात तो यह है कि यह बालक इसी दिव्य दिन उत्पन्न हुआ था। इनके अवतार के विषयों में श्री प्रतिवादि भयंकर अनण्णन् स्वामी ने श्री वरदराज भगवान के सामने समर्पित ''सप्ततिरत्नमालिका'' में कह रहे है:-

भाद्रपद मासगत विष्णु विमलर्क्षे, वेंकटमहीध्रपतितीर्थदिनभूते।

प्रादुरभवज्जगति दैत्यरिपुघण्टा, हन्त कवितार्किक मृगेन्द्रगु- भाद्रमास के श्रवण नक्षत्र में, जिसमें वेंकटेश भगवान् का अवभृतोत्सव हो रहा था, श्री भगवान् की घंटा ही कवितार्किकसिंह श्री वेदान्तदेशिक के रूप में अवतीर्ण हुई यह बात स्वयं वेदान्तदेशिक स्वामी ने अपने नाटक संकल्प सूर्योदय ग्रन्थ की प्रस्तावना में कही है।

वित्रासिनी विबुध वैरिवरूथिनीनां, पदमा सनेन परिचारविधौ प्रयुक्ता।
उत्प्रेक्ष्यते बुध जनैरूप पति भूम्ना, घण्टा हरेः समजनिष्ट पदात्मनेति॥

अर्थ - असुरों की सेना को दहलाने वाली तथा श्री ब्रह्मा जी से कैंकर्य के लिए समर्पित श्री भगवान की घंटा श्री वेंकटनाथ जी के रूप में अवतीर्ण हुई। ऐसे विद्वान लोग, कारणों को देखकर उत्प्रेक्षा करते हैं। इसी प्रकार बुद्धिमान और ज्ञानिजनों का मानना है कि भगवान् का घण्टा ही श्रीवेदान्तदेशिक स्वामी के रूप में अवतरित हुई तथा यह तथ्यों के आधार पर प्रमाणित भी किया है।

सप्तति रत्न मालिका प्रतिवादी भयंकराचार्य अनुगृहीतः-

सशंखचक्रलाञ्छनः सदूर्ध्वपुण्ड्रमण्डितः।
सकण्ठलग्नसत्तुलस्यनर्घ पद्ममालिकः॥
सितान्तरीय सूत्तरीय यज्ञसूत्र शोभितः
ममाविरस्तु मानसे गुरुः स वेंकटेश्वरः॥

अनन्तसूरि सूनवेऽभिनन्द्यमान वैभवाद्
दिगन्त वादिहसं जैत्रकालमेघ देशिकात्।
उपात सर्वशासनाय हन्त वर्ष विंशतौ

पुनः पुनर्नमस्क्रियास्तु वेंकटेशसूरये ॥

कवितार्किकः कलभवव्रज कबलि कृत सिंहम
कमलापति करुणारस परिवर्धितबोधम्।
यति नायक पद् पंकज युगली परतन्त्रं
भजमानुष भुद वेंकट पतिदेशिकमनिशम् ॥

कलये सततं करुणा जलधिं
करुणा विषयं कमलाधिपतिहे
कलि वैरिशिठायरि वचो रसिकं
कवितार्किक केशरी सूरी गुरुम्।

गुरु वादि हंसाबुदाचार्य शिष्ये
जना भक्तिहीना यतिन्द्रा प्रियाः स्युः
यतिन्द्राप्रिया विष्णु कारुण्यदूराः
कुतोमुक्तिवार्ता हि तादृग्विधानां

वेदे संजात खेदे मुनिजन वचने प्राप्त नित्यावमाने
संकीर्णे सर्व गरणे सतितद्नुगुणे निष्प्रमाणे पुराणे ॥
मायावादे समोदे कलि कलुष वसात शुन्य वादे अविवादे
धर्मत्राणाय योऽभूत सजयति भगवान् विष्णु घण्टावतारः ॥

श्री वेदान्तदेशिक स्वामी के उत्कृष्ट ज्ञान तथा समाज के प्रति अपने दायित्वों की पूर्ति के लिये उन्हें हमेशा याद किया

जायेगा। आपकी इसी प्रतिभा के कारण आपके समकालीन विद्वान् आपको भगवान् वेंकटेश का अवतार मानते थे या कुछ लोग भाष्यकार रामानुज स्वामी का अवतार मानते थे, क्योंकि आपके द्वारा तमिल तथा संस्कृत में रचित ग्रन्थों में परमकोटि का ज्ञान भरा हुआ है। या यह भी कह सकते हैं कि आपने समस्त शास्त्रों का सार निचोड़ कर एकत्रित करके हम लोगों को सुलभ कराया है। श्री स्वामी जी के पुत्र कुमार वरदाचार्य ने भी अपने देशिक मंगलम् स्त्रोत में इसी बात की पुष्टि की है।

वास्तव में श्रीवेदान्त देशिक स्वामी का नाम वेंकटनाथ था, लेकिन विद्वानों ने मिलकर उनको वेदान्त देशिक की उपाधि ा दी थी। कुछ लोगों के मतानुसार वे बेंकटेश भगवान् के अवतार थे, तो कुछ लोग उन्हे धण्यमणि अवतार मानते है तो वही कुछ लोग उन्हे भाव्यकार स्वामी रामानुज का अवतार मानते हैं-

कुमार बरदाचार्य ने अपने द्वारा तमिल भाषा में एक प्रबन्ध की रचना की है जिसका नाम पिल्लै अन्तधि है। इसी वरदाचार्य ने उल्लेत्व किया है कि अनादिकाल (सृष्टि के आरम्भ में) में जब भगवान् ने सृष्टि की और ज्ञान को वेदों तथा शास्त्रों के रूप में व्यक्त किया। इसी ज्ञान को हमारे ऋषियों और आलवारों ने हमे हमारी भाषा में समझाने का प्रयत्न किया। कालान्तर में जब समाज में मायाबाद और शून्यबाद जैसे कुतर्कों ने भ्रामक स्थिति उत्पन्न कर दी, तब स्वयं बेंकटेश भगवान् ने कलयुग के प्राणियों के कल्याण की कामना से तथा पुनः ज्ञान तथा शास्त्रों के संबधन हेतु कांचीपुरम के फुपिल नामक ग्राम में

अवतार लिया। इन्ही को हम आज वेदान्त देशिक के नाम से जानते हैं।

उसी समय एक प्रकाण्ड विद्वान कवि हुये, जिन्हे हम दिमदिमा के नाम से जानते हैं। इन्होंने (चौदहवीं शताब्दी में) श्रीवेदान्त देशिक स्वामी जी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा है कि - जब कलयुग की कलुषित प्रकृति के कारण चारो तरफ भ्रामक स्थिति उत्पन्न हो गई थी। सज्ज्ञानियों की उपेक्षा होने लगी थी। लोग अपने कर्म को (जातिगत कर्म) छोडकर इधर-उधर के ज्ञान (वास्तव में अज्ञान) को स्वीकार करने लगे थे, जिससे वर्णसंकरता जैसी भयावह स्थिति उत्पन्न हो गई। परिणामस्वरूप धर्म ग्रन्थ अपनी प्रमाणिकता खोते जा रहे थे। मायावाद चरम सीमा पर था। शून्यवाद को तो लोगों ने स्वीकार भी कर लिया था। तब इस नाजुक स्थिति में स्वयं श्री भगवान् वेंकटेश अवतरित होकर श्रीवेदान्तदेशिक के रूप में आये। और पुनः धर्म की स्थापना की।

प्रतिवादि भयंकर पीठाचार्य श्री अण्णगराचार्य (1300-1400 ई.) ने श्री स्वामी के उपदेशों को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य किया। ये श्री कुमार वरदाचार्य के शिष्य थे। इनकी भूमिका सामाजिक उत्थान में एक प्रमुख स्थान रखती है। इन्होंने कुमार स्वामी के जन्म, परिवार तथा शिक्षा के बारे में अपनी कृति सप्ततिरत्नमालिका में कुछ इस प्रकार कहा है-

स्वामी वेदान्तदेशिक विश्वामित्र गोत्रोत्पन्न थे। इनके पिता महामीमांसक अनन्तसूरी थे। यहां पर यह कहना गलत नहीं भी होगा कि श्रीअनन्तसूरी अपने पिता पुण्डरीकाक्ष के समान महान् मीमांसक थे। जब आचार्यवर अपनी माँ तोतारम्बा के गर्भ में आये, तब उनकी मुखमण्डल की आभा ऐसी हो गई, जैसे समुद्र में निकले चंद्रमा की चांदनी दिखाई देती है।

श्रीवेदान्तदेशिक स्वामी जी को श्रीवरद गुरू (नडाडूर अम्माल) का विशेष आशीर्वाद प्राप्त था। हंसाम्बुद श्री वादी हंसाबुवाह (अप्पुलार) से सभी शास्त्रों का अध्ययन किया। श्री स्वामी के प्रत्येक अंग में श्री भगवान् के समान चिह्न थे। तथा इनमें से विशेष प्रतिभा भी थी। इसी कारण इनको समकक्ष विद्वानों ने भगवान् का अवतार माना। तथा इनकी प्रतिभा और गुणों को देखकर तथा अद्भूत शास्त्रार्थ के कारण इनको सर्वतन्त्र स्वतन्त्र की उपाधि के विभूषित किया। **पुत्रो अनन्ताय शूरेः पुरूषसमगुणाः।**

हमारे शास्त्रों ने जन्म से लेकर मरण तक जिन षोडश संस्कारों को कहा है। उन्हीं संस्कारों को उचित समय पर श्री अनन्तसुरी ने अपने पुत्र को प्रदान किये। जिसके परिणामस्वरूप श्री वेदान्तदेशिक स्वामी में भगवान् के प्रति श्रद्धा और आध यात्मिकता में स्वतः रूचि उत्पन्न हो गई। श्रीआचार्यवर्यजी की बचपन से ही इतनी दक्ष बुद्धि थी कि किसी भी विषय को एक बार में ही याद कर लेना तथा समझकर दूसरों को भी समझा देना यह विशेष गुण हो गया। जब उनके पिताजी ने यह विशेष प्रतिभा

देखी, तो वे आचार्यवर को भी भगवान् वरदराज की सन्निधि मे ले जाने लगे। जिस प्रकार इनके मामा अप्पुलार मंदिर में आराधना और भजन के कार्य किया करते, उसी प्रकार आचार्यवर भी उनको देखकर किया करते थे। अप्पुलार भगवान् के अन्यावतारों के साथ-साथ उनके गुणों और महिमा का भी बखान सुनाया करते थे। परिणाम स्वरूप श्री आचार्यवर मात्र पाँच वर्ष की अवस्था में ही अत्यंत मेधावी होने के साथ-साथ भक्ति तथा दार्शनिकता की ओर अग्रसर होने लगे। इस सुकोमल अवस्था में ही इनमें विशेष प्रतिभा दिखाई देने लगी। कालान्तर में इन्होंने अपनी प्रतिभा को अनेक ग्रन्थों के रूप में प्रकट किया। जिनमें एक विशेष ग्रन्थ **रहस्यत्रय** सार भी लिखा है। जिसमें आचार्यवर स्वयं कहा है कि आज तक मैंने जो कुछ लिखा है। वह सब मेरे मामा और आचार्य अप्पुलार के प्रेम और लगन से दी हुई शिक्षा का परिणाम है। जैसे एक मालिक अपने तोते को बोलना सिखाता है उसी प्रकार मेरे आचार्य ने भी सतत् प्रयत्न से मेरी बुद्धि का विकास किया।''

एक दिन वह समय भी आ गया, जब श्री आचार्यवर अपने मामा और आचार्य अप्पुलार के साथ रोज की तरह भगवान् वरदराज की सन्निधि में दैनिक दिनचर्या कर रहे थे। तभी श्री अप्पुलार के आचार्य नडाडूर अम्माल श्री वात्स्यवरदाचार्य अपने शिष्यों को श्री भाष्य का कालक्षेप करा रहे थे। तभी सबका ध्यान श्री आचार्यवर के ऊपर गया। उनकी कांति से सभी प्रभावित हो गये। यहां तक कि श्री नडाडूर अम्माल भी नहीं

छूटे। परिणामस्वरूप श्री भाष्य का कालक्षेप में व्यवधान उत्पन्न हुआ। तब श्री नडादूर अम्माल ने अप्पुलार से इस कांतिमय बालक के बारे में जानने की इच्छा प्रकट की। तब वहाँ के लोगों ने कहा कि ये आत्रेयरामानुजाचार्य के भागिनेय हैं, और उन लोगों ने स्वप्न में घंटा निगलना बाहर वर्ष पर्यन्त गर्भ में रहना, अक्षराभ्यास में सामर्थ्य प्रभावों का प्रकट करना इत्यादि। इसी बीच श्री वात्स्यवरदाचार्य अपने शिष्यों से छूटे हुए पाठ का स्थल पूछा तो शिष्यलोग भी श्री वेंकटनाथ के प्रभाव के चिन्तन से पाठ का स्थल भूल गये और स्थल बोल नहीं सके उस समय बालस्वरूप श्री आचार्यवर का नडादूर अम्बाल (श्री वात्स्यवरदाचार्य) से बातें हुई। उस विस्मृत स्थल का सविस्तर निरूपण किया जब इस बालक से की बाते प्रारम्भ हुई और आचार्यवर बोलने लगे तब सभी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। श्री नदीरमल उस बालक की प्रतिभा से इतने प्रभावित हुये कि उन्होंने इस बालक को अनेकानेक आशीर्वादों की बौछार कर दी। और श्री वात्स्यवरदाचार्य ने श्री आचार्य को तुरन्त उठाकर गोद में बैठा लिया और संतुष्ट होकर बोले–

प्रतिष्ठापित वेदान्त प्रतिक्षिप्त बहिर्मतः।
भूयस्त्रै विद्या मान्यस्त्वं भुरिकल्याण भाजनम्।

सकंल्यसूमोडम् एवं नडादूर अम्बाल श्री आचार्य को आशीर्वाद के रूप में अनेकानेक ऐश्वर्य प्रदान किये और बोले तुम अपने आचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित विशिष्टाद्वेत सिद्धान्त को बढ़ाओगे और कलुषित कुपथ रूपी कुतर्क को खण्डन करके पुनः अपने

वैदिक सनातन धर्म को प्रतिष्ठापित करोगे एवं इन सनातन धर्माचार्यों के द्वारा सम्मान प्राप्त करोगे साथ–साथ आपकी ख्याति विश्व में बढ़ेगी।

इस आशीर्वाद को भी आचार्यवर के जीवन में एक विशेष स्थान रखता है। श्री नडाडूर अम्माल के द्वारा बोले गए आशीर्वाद (वाक्य)भी आचार्यवर के बुद्धि में एक ऊर्जित बीज की तरह स्थापित हो गया, जो आगे चलकर श्री आचार्यवर के जीवन में एक विघटित घटना की तरह उनके बुद्धि में चित्रांकित हो गया, आज भी हम सब इस घटना का चित्रांकन भी वरदराज मन्दिर के कच्चीविट्टन मण्डप के आगे (छत पर) दर्शन का सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं। यह चित्र नाददुर अम्बल आचार्य मामा अप्पुलार के साथ आदर पूर्वक खड़े हैं और श्री भाष्य को काल क्षेप के समय श्री आचार्यवर को आशीर्वाद प्रदान कर रहे हैं।

श्री आचार्यवर अपने संकल्प सूर्योदय नामक ग्रन्थ में अपनी हृदयस्थ विचार को स्वयं उद्धरित करते हुए एक नाटक रूप में प्रकट करते हुए एक नाटक रूप में दर्शाते हैं कि एक स्वामी एक छोटे से बालक को आशीर्वाद दे रहे हैं कि यह बालक दूसरे कुपथ, कुतर्क रूपी, जो सिद्धान्तों को खण्डित करके अपने विशिष्टाद्वैत सिद्धांत को विश्व में स्थापित करने जा रहा है, इसमें जो स्वामी आशीर्वाद दे रहे हैं, वो साक्षात् भाष्यकार यतिराज भी रामानुज स्वामी हैं और छोटे बालक एवं श्री आचार्यवर वेदान्तदेशिक हैं, श्री आचार्यवर की इच्छा थी कि उनके आचार्य

श्री रामानुज स्वामी हों और अपने इस इच्छा को उस नाटक के माध्यम से पूर्ण किये , क्योंकि श्री भाष्यकार 11 वीं शताब्दी में आये और श्री आचार्य वर 13 वीं शताब्दी में आये थे। अतः दोनों आचार्यों का एककाल के अभाव में गुरु शिष्य संबंध होना असंभव था, इसलिए आचार्य अपनी आकांक्षा की पूर्ति इस नाटक के अभिनय के द्वारा प्राप्त करते हैं, इस नाटक में मुख्य दो पात्र हैं श्री भाष्यकार एवं श्री आचार्य वर, इस संकल्प सूर्योदय नामक ग्रन्थ में श्री आचार्यवर परोक्षरूप से श्री स्वामी जी के द्वारा आर्शीवाद ग्रहण कर लेते हैं। इधर जब अप्पुलार स्वामी अपने आचार्य के पास श्री आचार्य वर जी को नादीरमल के द्वारा आशीर्वाद प्राप्त कर पा रहे थे तभी नडाडूर अम्माल अपने शिष्य अप्पुलार से कहे एवं आज्ञा दी कि तुम अपने भांजे (श्री आचार्यवर)को सभी शास्त्रों अध्ययन कराओ और पूर्ण शास्त्रज्ञ बनाओ, यह एक अवतार विशेष है। श्री कुरूकेश जी तथा श्री विष्णुचित्ताचार्य जी का भी आदेश है कि सत्पात्र में सम्प्रदाय दिया जाय। अब स्वप्नवृन्तान्त से तो यही सत्पात्र मालुम होते हैं। मुझको इतना भाग्य नहीं है कि इनको पढ़ाकर संप्रदाय में शिक्षित बनाऊँ। मैं इन्हें स्वयं अध्ययन कराना चाहता हूँ, पर मैं अब बहुत जीर्ण अवस्थापन्न प्राप्त कर चुका हूँ यह बालक शिक्षित एक महान आचार्यत्व प्राप्त करेंगे और श्री विशिष्टाद्वैत सिद्धांत को विस्तार करेंगे, अतः आप ही श्री प्रणतार्तिहाचार्य की परम्परा से

प्राप्त मन्त्रमन्त्रार्थ तथा कुरूकेशाचार्य के द्वारा प्राप्त श्री भाष्य आदि ग्रन्थ का उपदेश दें और उसके पहले सामान्यशास्त्रों का उपदेश दें'' ऐसा कहकर श्री वात्स्यवरदाचार्य ने श्री आचार्यवर की आत्रेयरामानुजाचार्य के हस्त में दे दिया और अप्पुलार अपने आचार्य की आज्ञा प्राप्त कर अपने भांजे (श्री आचार्यवर) के साथ घर वापस आ गये।

इसलिए तो श्री आचार्यवर ने तत्वमुक्ताकलाप में कहा है:- **श्रुत्वा रामानुजाचार्यात्सदसदपि ततस्त त्वमुक्ताकलाप। व्यातानी द्वेतक वेंकटेशः वरगुरू कृपा लम्भितोद्दामभूमा॥**

अर्थ- श्री वात्स्यवरदाचार्य की कृपा से जिनकी महिमा बढ़ी है, उस बडे वेंकटनाथ जी ने आत्रेयरामानुजाचार्य के पास सन्मत तथा असन्मत शास्त्रों का भी सीख कर अभी तत्त्व मुक्ताकलाप को रचा।

अनन्तर श्री वात्स्यवरदाचार्य का वैकुण्ठवास हो गया उस अवसर पर आत्रेयरामानुजाचार्य, श्री सुदर्शन भट्ट, श्री कृष्णपाद स्वामी आदि शिष्यों ने वात्स्यवरदाचार्य के औरस पुत्र देवराजाचार्य के द्वारा सभी चरमकैंकर्य कराया।

अनन्तर-श्री आचार्यवर अपने पिता श्री अनन्तसूरी के द्वारा सात वर्ष की अवस्था में उपनयन संस्कार से उपनीत संस्कारित होकर वेदाध्ययन कर रहे थे। वे भी यामुनाचार्य की तरह एक संघाग्राही थे। अनन्तसूरी जी ने भी उनको साङ्गवेद का

अध्ययन कराया। श्री आचार्यवर भी वेदाध्ययन आदि में अतिनिष्णात थे। अनन्त श्री आत्रेयरामानुजाचार्य ने श्री आचार्यवरभगवद्विस्यादि को शब्द तर्क मीमांसा आदि सामान्यशास्त्र, मन्त्रमन्त्रार्थ, श्री भाष्य भगवविषयादि विशेष शास्त्रों को विशेषार्थों के साथ उपदेश देकर ऐसा बना दिया कि वेंकटनाथ जी श्रुतिस्मृति–इतिहासपुराणों में पारदर्शी सामान्य तथा विशेष शास्त्रों में समर्थ मंत्र मन्त्रार्थों मे भी मन्नाथमुनि, यामुनाचार्य के अवतार रूप ज्ञात हो रहे थे और ज्ञान, अनुष्ठान तथा वैराग्य की निधि हो गये थे। और सभी द्वारा आचार्यों के द्वारा वरण करने योग्य हो गये थे। अनन्तर आत्रेयरामानुजाचार्य (अप्पुलार) ने श्री आचार्यवर जी को व्रत समापन कराया। और श्री आचार्यवर जी 20 वर्ष की अवस्था तक सभी वेद वेदान्त, आस्तिक नास्तिक दर्शनों का अध्ययन कर उन सब शास्त्रों में पाण्डित्य को प्राप्त किया।

जातवर्ण चर्चा घेन के प्रकार

त्रयीलक्षणों च्चारणे व्यासकल्पः
तथा कल्पसूत्र प्रयोगघभिझो
जयत्यन्वहं सर्वतन्त्र स्वतन्त्रः।।

भरद्वाजशाण्डिल्म हारीत मुख्य
स्मृतिस्मोट सूक्ष्माये निर्णीतिदक्षः।

पुरुणागमाहिस्व साधारण श्री

स्तुतो भाति लोकेस्वनन्नृार्मसूरेः।।

ज्योति 6 छन्द शब्द शास्त्र प्रवीणः

काण्य श्रेणीनाटका लडकृतिह्मः।

मीमासायाद व्रह्म कर्मानुगाथा

स्त्रष्टा साक्षात्सर्वतन्त्र स्वतन्त्रः।।

साङ् 10 ये भोगे भाट्टतन्त्रे गुरुक्ते

शैव जैने शाडको भास्करे च।

शास्त्रों बौद्धे भाद्रवे गर्विताना

प्रत्या10याता सर्वतन्त्र स्वतन्त्रः

उपरोक्त सभी विद्याओं के अध्ययन के पश्चात् (ब्रह्मचर्यआश्रम)के पश्चात् आचार्य वर श्री वेदान्त देशिक स्वामी के हर प्रकार से भोग्य अथवा योग्य "**तिरुमङ्गै**" श्रीकनकवल्ली नाम की कन्या से विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किये, संकल्प सूर्योदय में इसी बात के स्वयं श्री आचार्यवर जी ने कहा -**विंशत्मब्दे विश्रुत नानाविधविधः, त्रिंशद्वार भावतशारीरक भास्यः।।** अर्थ - श्री आचार्यवर जी ने वीस वर्ष में ही समस्त विद्याओं को सीख लिया था और तीस बार श्री भाष्य का प्रवचन किया था। इस प्रकार भी आचार्यवर जी की महिमा अवर्णनीय

थी। श्री आचार्यवर की वैभव को प्रतिवादिभयंकराचार्य ने अच्छी तरह वर्णन किया। जो ऊपर श्लोक रूप में बतला चुके हैं। और गृहस्थाश्रम की सारी जिम्मेदारियों उन्होंने बहुत ही निष्ठा श्रद्धा और परम्परागत निर्वहन करने लगे जैसे की भगवान वरदराज के सन्निधि में जाकर उनकी पूजा अर्चना करना, भगवदराधना भगवतस्तुति, भगवद्चिन्तन आदि बहुत ही सात्त्विक पूर्वक करने लगे हर दिन मन्दिर के परिक्रमा वीथी में (गलियों में) स्तोत्र और भगवान् के भजन गाते हुए उञ्छ वृत्ति करते थे, काँची के निवासीजन कुछ स्वेच्छा पूर्वक उन्हें जो दे देते वे घर लाकर और उञ्छ वृत्ति द्वारा प्राप्त अन्न से (तिरुमङ्गै) पत्नी सात्त्विक प्रसाद तैयार कर मध्यान्ह समय में आचार्यवर संस्कृत प्रसाद को अपने इष्ट देव वरदराज की निवेदन कर लगाकर प्रसाद ग्रहण करते, ऐसी सात्त्विक गृहस्थाश्रम का निर्वहन करते हुए श्री आचार्यवर को देखकर अप्पुलार बहुत ही प्रसन्न हुए। अप्पुलार की इच्छा हुई कि आचार्यवर (वेंकटनाथ) आध्यात्मिकदर्शन और आध्यात्मिकशक्ति के साथ-साथ और ज्ञान का वर्धन करें इसलिए श्री आचार्यवर को गरुड़मंत्र की दीक्षा दी और विशेषार्थों का उपदेश देकर आशीर्वाद दिया कि आप रामानुज सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक होंगें कहा की इस मन्त्र को जपो और भगवान् गरुड़ की कृपा पाने के लिए इनकी (गरुड़ जी) उपासना करो। इसीलिए श्री आचार्यवर जी "न्यासतिलक" में कहा "**यो माहानसिकी**

महान्यतिपतेर्नीतश्वचतत्पौत्रणः। नाचार्य नितिरडगधुर्य मयि ते स्वत्याद शिष्ठीभरः।। अर्थ – हे श्री रङ्गनाथ भगवान्। आप ने हमको श्री रामानुजचार्य के रसोईया श्री प्रणतार्थीहराचार्य के पौत्र के पुत्र आत्रेयरामानुजचार्य के शिष्य भी बनाया। अतः हमारे विषय में आपका भार बहुत ही कम बचा है।

उसके बाद श्री आचार्यवर जी श्री काञ्ची में ही सिद्धान्त का प्रवचन करते हुए, नित्य कर्मानुष्ठान्, भगवद्भागवताचार्य का कैंकर्य करते हुए रहते थे। आत्रेयरामानुजाचार्य का विग्रह रोगग्रस्त हो गया तब उन्होंने श्री आचार्यवर जी को बुलाया और कहा कि आइये। आप ही श्री रामानुजसिद्धांत प्रतिष्ठापक हैं ऐसा भी श्री वात्स्यवरदाचार्य ने बतलाया था। अतः उनके द्वारा प्राप्त भगवद्रामानुजाचार्य की श्री पादुका तथा शंख चक्र आप ले लीजिए। इस से आचार्यवर को उतना ही हर्ष हुआ जितना भूखे मनुष्य की अच्छे अच्छे पकवान देने से होता है। उन्होंने (आचार्यवर जी) सादरपूर्वक उन दोनों को अपने आराधना में रखकर आत्रेयरामानुजाचार्य की चरणपादुकाओं को अपने सिर से वहन करते थे श्री आत्रेयरामानुजाचार्य ने प्रसन्न होकर श्री अचार्यवर आदि शिष्यों को श्री तीर्थ देकर स्वयं भी स्वाचार्य के श्रीपादतीर्थ ग्रहण कर श्रीवैकुण्ठ पधारे। श्रीआचार्यवर जी ने उनके औरस पुत्र श्रीपद्मनाभाचार्य के द्वारा उनका और श्रीचूर्ण परिपालन चरम संस्कार कैंकर्य (दाह आदि संस्कार) करा दिया।

आत्रेयरामानुजाचार्य का नक्षत्र मेषाद्र्रा है।

अनन्तर श्री आचार्यवरजी सप्तमुक्ति पुरियों में श्रेष्ठ काञ्चीपुरी में आचार्यवर प्रवचन कर रहे थे। उस समय श्री वीरवल्ली वरदाचार्य जी कलयुग के 4388 में व्यय वर्ष में भाद्रपद श्रवण नक्षत्र में वीरवल्ली चार्य के वंश में अवतीर्ण हुए थे। श्रीआचार्यवर जी के आश्रित हो गये और उन्होंने श्रीआचार्यवर जी के विषय में तनियन् श्लोक बनाया।

''नमः पद्दिं भूमान्तस्मैं वेङ्गकटसूरये। यद्वागमृतस्वेकेन सञ्जीवितंमिदं जगत ''। अर्थ - श्रीआचार्यवर वेंकटनाथ के लिए, जिनकी वाणी रूप अमृत के सींचने से यह प्रपंच उजीवित हो उठा है नमः पद् नमस्कार है अनन्तर आचार्य इच्छा हुई थी आचार्य उपदिष्ट वैनतेय मन्त्र की आवृत्ति कर फल पावे। तदर्थ श्री वेदान्तदेशिक स्वामी जी भगवान् गरुड़ की उपासना द्वारा उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए कौनसा स्थान उपर्युक्त होगा ऐसा विचार करने लगे, मंथन करने पर उनके मन में आया कि तिरुआहिन्द्र पुरम जी एक आदर्श स्थान होगा, क्योंकि वहां पर गरुड नाम की नदी है, और औषन्ध्री पर्वत भी है इन दोनों की मौजुदगी से श्री आचार्यवर समझ गये की स्थान सिद्धि साध्य है ऐसा विचार कर वे काञ्ची से उस स्थान की ओर चल पड़े वहां पहुँचने के बाद उन्होंने गरुड़ नदी में स्नान किया और भगवान् देवनाथ का दर्शन पूजन कर ओषंध्री पर्वत पर एक बडे छायादार

अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठकर अपने मन एवं इन्द्रियों को एकाग्र कर गरुड़ भगवान् का ध्यान करने लगे। इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत होने पर चारों वेदों की हर समय पारायण करने वाले या फिर जिनके पक्ष के चलने से चारों वेद का ध्वनि प्रकट होती है ऐसे भगवान् गरुड़ स्वयं आचार्यवर के समक्ष प्रकट होकर भगवान् हयग्रीव के मन्त्र की दीक्षा दी और कहा की उपासना एवं ध्यान के द्वारा इनको प्रसन्न करो आचार्यवर गरुड़ भगवान् के कथनानुसार बहुत ही निष्ठा के साथ हयग्रीव भगवान् की अराधना की और उपासना से प्रसन्न होकर भगवान् हयग्रीव उन्हे दर्शन दिए और अपने मुख (हयग्रीव) मुख से आपको लालामृत ज्ञान का पान कराया आचार्यवर आशीर्वाद पाकर बहुत प्रफुल्लित हुए और जब आपकी यह पता चला की भगवान् हयग्रीव की कृपा से ज्ञान, विज्ञान, आगम, निगम आदि प्राप्ति हुई है तब आपने भगवान् से प्रार्थना की कि हे भगवान् हयग्रीव आप मेरी जिह्वा पर विराजमान हो जाय ताकि आपके मुखारविन्द से निकला हुआ शब्द भगवान् हयग्रीव की कृपा से सत्य और प्राथमिक हो जाय फिर आपने भगवान् हयग्रीव की स्तुति 33 श्लोक में इस प्रकार की है :-

ज्ञानानन्दमंय देव निर्मलस्फटिका कृत्तिम आधार विद्यानाम हयग्रीवमुपास्महे।।

आचार्य वर के हृदयस्थेच्छा को ''तथास्तु'' बोलकर भगवान्

हयग्रीव अन्तर्ध्यान हो गये।

भगवान् हयग्रीव के अन्तर्धान होने के पश्चात् आचार्यवर महसूस करने लगे कि अपने हृदयपटल में तरह तरह की ज्ञान विज्ञान स्फूटित हो रहे है समुचित समय और समुचित स्थान प्राप्त होने पर भी श्री आचार्यवर सर्वप्रथम श्री हयग्रीवस्तोत्रम बनाया फिर गरूड़पञ्चाशत् बनाया, श्री देवनायक भगवान् के लिए देवनायक पञ्चाशत् अच्युतशतकम्, मुम्मपिकौवै'' आदि सात ग्रन्थ बनाये। एक दिन आचार्य के मन में परमतविलास अपना रूप बांध रहे थे। उसके निराकरण के लिए आचार्यवर ने ''परमतभङ्ग'' बनाया। दूसरे दिन श्री आचार्यवर श्री रामचन्द्र भगवान का दर्शन कर **''रघुवीर गद्यम्''** तथा भगवान कृष्ण का दर्शन कर **गोपालविंशति** स्तोत्र बनाये। इस प्रकार आचार्य ने संस्कृत, प्राकृत, तमिल, मणिप्रवल आदि भाषाओं में , काव्य, नाटक, गद्य, पद्य, छंद रूप से संरचना आरम्भ कर दी। आप अपने जीवन काल मे एक के बाद एक समयानुसार 120 से भी अधिक रचनायें की उनमें से कुछ देवी-देवता, उनके पार्षदों का कुछ उनके गुणों का कुछ आपके ही जीवन एवं त्याग का और कुछ भाष्यकार शेषावतार श्री रामानुज स्वामी द्वारा संस्थापित आधार भुत सिद्धान्तों का निरुपण करती हैं। आपकी कुछ कृतियाँ पूर्वाचार्या जैसे यामुनमुनि श्री रामानुज स्वामी की कृतियों पर व्यवसाय करती है। आपके कृतियों द्वारा आपके ही समकक्ष एवं

आपके पश्चात् के विद्वानजन मानते है कि आप वेद,उपनिषद् आगम, निगम, मन्त्र–शास्त्र, नक्षत्रों की गतिविधि, भूगोल शास्त्र, वास्तु शास्त्र, नीतिशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, संगीत, नृत्य, नाटक कावय, सिद्धान्त शास्त्र, मीमांसा के मर्मज्ञ, एवं ये सब आपके सिद्धांत थे आप एक महा काव्य चमत्कारिक नाटक रचयिता हैं। आप कालिदास, बाणभट्ट, भवभूति, उदयन, जयन्त भट्ट आदि पूर्व विद्वानों के रचनायें, संक्षिप में कहा जाय तो ज्ञान विज्ञान की कोई शाखा नहीं है जिसमें आप निपुण नहीं थे। श्री आचार्यवर की विद्वता के बारे में आगे विद्वज्जन की सदभावना से व्यक्त होता है–
अनन्तर श्रीदेवनायक भगवान से विदा लेकर श्रीगोपपुर पहुँचे। वहाँ श्रीत्रिविक्रम भगवान के विषय में '**श्रीदेहलीशस्तुति**' बनायी। अनन्तर काञ्ची पहुँच कर श्रीअनन्तसरोवर में स्नानादि नित्यकैङ्कर्य का अनुष्ठान कर आचार्य वेङ्कटनाथ ने श्री महादेवीसहित श्रीवरदराज भगवान का दर्शन किया जिस भगवान ने उन पर प्रथम कृपादृष्टि की। अनन्तर श्रीभाष्यकार प्रतिपादित, तथा श्रीमदात्रेयरामानुजाचार्य के द्वारा उपदिष्ट प्रपत्त्यर्थ को अनुसंधान करते हुए **अड़गपंचक (न्यासदशक)** के साथ आचार्य ने **अडगपंचक (अङ्गपंचक)** श्रीवरदराज भगवान के चरणकमलों में आत्मभर समर्पण कर दिया और वे निर्भर हो गये। श्रीवरदराजभगवान ने भी अर्चक के द्वारा आचार्य को आज्ञा दी कि हमारे विषय में कुछ ग्रन्थ बनावें। आचार्य ने भी इस आज्ञा

को शिरोधार्य कर लिया तथा तीर्थप्रसाद ग्रहण कर वीथी प्रदक्षिणा करते हुए समस्त दिव्यसूरि तथा आचार्य का दर्शन करते हुए हिमोपवन नामक दिव्यदेश में अपने गृह में पहुँच गये। आचार्य अपने समीप में ही स्थित दीपप्रकाश भगवान का दर्शन कर प्रतिदिन भगवद्भागवताचार्यों का कैंकर्य तथा सिद्धान्तप्रवचन करते रहे। श्रीवरदराज भगवान के विषय में अपनी की हुई प्रपत्ति को '**न्यासदशक**'' नामक ग्रन्थ में, उस प्रकार रक्षाभार को स्वीकार करने वाले श्रीवरदराज भगवान के विषय में ''**वरदराजपञ्चाशत्**'' और पाँच द्राविड़भाषामय ग्रन्थों को बनाया। एवं आचार्य ने अपने को सन्मार्ग में लगाने वाले उस क्षेत्र की महिमा को ''**श्रीहस्तिगिरिमाहात्म्यम्**'' नामक ग्रन्थ में वर्णित किया है। अनन्तर आचार्य ने समीप में स्थित दीपप्रकाश भगवान के विषय में ''**शरणागतिदीपिका**'' एवं ''**अष्टभुजाष्टक**''''**कामासिकाष्टक**'' बनाया। आचार्य कभी यथोक्तकारि भगवान को दर्शन करने गये थे। उन्होंने ''**यथोक्तकारिस्तोत्र**'' बनाया। आचार्य श्रीपंछि तीर्थ गये हुए। तब वहाँ के क्षेत्रधीश श्रीकनकवल्लीसमेत (किराघव) श्रीविजयराघव भगवान् का दर्शन कर उनके विषय में आचार्य ने ''**परमार्थस्तुति**'' बनायी। बाद में आचार्य अपने घर पहुँच कर ''**सुदर्शनाष्टक**'' ''**षोडशायुधस्तुतिः**'' नामक ग्रन्थों का निर्माण किया। आचार्य अपने को इतने ज्ञानवान् बनाने वाले श्रीवरदराज भगवान के विषय में निम्मलिचिखत श्लोक का अनुसंधान करते थे –

''संसारावर्तवेगप्रश मनशु मधग्देशिक प्रेक्षितो ऽहं सन्त्यक्तो ऽन्यैरूपायैरनुचितरितेष्वद्य शान्तामिसंधिः। निःशङ्कस्तत्त्वदृया निरवाधिकदयं प्राप्य संरक्षक त्वां न्यस्य त्वत्पादपदे वरद निजभरं निर्भरो निर्भयोऽस्मि॥'' हे वरदराज भगवान्। मैं, जो कि संसाररूपी नदी के प्रवाहों से बचाने वाले शुभदृष्टि से संपन्न आचार्यों से अनुग्रहीत हूँ, समस्त उपायों से त्यक्त हूं, अनुचित कर्मों से हाथ हटा लेने का निश्चय कर चुका हूँ, अब निः शङ्क होकर तत्त्वज्ञान से निरवधिक दयावान् आपको संरक्षक के रूप में पा कर, आप के चरणकमलों में आत्मरक्षाभर का समर्पण कर निर्भय तथा भारशुन्य हो गया हूँ।

आचार्य श्रीवेङ्कटनाथ के मातुल तथा आचार्य आत्रेय रामानुजाचार्य की पुत्री थी, जो कि पुण्डरीकाक्षाचार्य की पत्नी थी, कलियुग के 4405 वें शोभकृद्वर्ष में भाद्रपदमास में श्रवणनक्षत्र में एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम श्रीनिवास रखा गया था। उस शिशु के रक्षार्थ श्रीआचार्य श्रीवेङ्कटनाथ ने शंखचक्र प्रदान किया। अपने पुत्र की उत्पत्ति का समाचार पाकर श्रीपुण्डरीकाक्षाचार्य, जो कि उस समय विजयनगर राज्य के अध ीश श्रीकृष्ण देवराय के स्थान में थे, काञ्ची आ रहे थे। उस रात्रि में उनके आराध्य श्रीहयग्रीव भगवान ने श्रीपुण्डरीकाक्षाचार्य के स्वप्न में आकर कहा कि ''श्रीभाष्यकार स्वामी जी के द्वारा प्रदत्त होकर आप के पास श्रीकुरुकेश जी के द्वारा आया हुआ हूँ। आप मुझको आचार्य श्रीवेङ्कनाथ को दे दीजिये जिन्होंने आप के पुत्र को 'श्रीनिवास' नाम रख कर उसकी रक्षा के लिये शंखचक्र

प्रदान किया।'' प्रातःकाल ही इस स्वप्न को आप ने श्रीकृष्णदेवराय से कहा। उन्होंने भी समस्त विरुद तथा वैभव के साथ उनको काञ्ची पहुँचाया। काञ्ची की समस्त जनता भी राजा के गुरु होने के कारण श्रीपुण्डरीकाक्षाचार्य का स्वागत करने लगे। आचार्य श्रीवेङ्कटनाथ को भी उसी प्रकार श्रीहयग्रीव भगवान को लेने के लिये स्वप्न हुआ था, अतः वे भी स्वागत करने गये थे। आचार्य को देखकर पुण्डरीकाक्षाचार्य ने षाष्टाङ्ग प्रणिपात कर स्वप्नवृत्तान्त बता कर श्रीहयग्रीव भगवान के श्रीविग्रह को श्रीवेङ्कटनाथचार्य के यहाँ पधरवा दिये। इस से आचार्य को इतना आनन्द हुआ जितना भूखे को अन्न खिलाने से। आचार्य ने कहा कि हे भगवान्। उस औषधांद्रि में आप ने लालामय अमृत का प्रदान किया और अब दोनों को स्वप्न में आज्ञा देकर दिव्यमङ्गल विग्रह का भी प्रदान किया, कितने आप की दया है। आचार्य श्रीहयग्रीवस्तोत्र से स्तुति कर अपने आराधन में स्थित श्रीवरदराज भगवान के साथ प्रति दिन आराधना करने लगे।

अनन्तर एक दिन श्रीवेङ्कटेश भगवान के दर्शन के लिये बहुत लोग श्रीवेङ्कटाद्रि जा रहे थे। आचार्य को भी जाने की इच्छा हुई क्योंकि स्वप्नघंटा वृत्तान्त के अनुसार अपने अवतार के लिये श्रीवेङ्कटेश भगवान ही प्रमुख हेतु थे। आचार्य चल पड़े। मार्ग के मध्य में घटिकाचल (शोलंगिपुरम) में श्रीनरसिंह भगवान का दर्शन तथा तीर्थ प्रसाद का ग्रहण कर, स्वर्णमुखरी नदी में स्नान कर श्रीशुकपुरी में श्रीमहालक्ष्मी जी का दर्शन कर आचार्य श्रीवेङ्कटाद्रि की तराई में पहुँचे थे। वहाँ आचार्य भगवदरामानुज

से प्रतिष्ठापित दिव्यसूरि तथा आचार्य का दर्शन कर श्रीगोविन्दराज भगवान का दर्शन करते हुए पर्वत का दर्शन कर चढ़कर मार्ग मध्य में श्री भगवान भाष्कार का दर्शन करते हुये श्रीवेंकटाद्रि के दिव्य नगर पहुँच गोपुर मन्दिर दिव्य विमान का दर्शन वीथि प्रदक्षिणा कर श्री स्वामी पुष्करणी पहुँचे वहाँ स्नान कर हयग्रीव भगवान तथा आदि वराह भगवान का दर्शन कर प्रदक्षिणा में मन्दिर पहुँचे कर आचार्य ने वहाँ सेवाक्रम से श्रीरामानुजाचार्य का दर्शन किया, और वे कुलशेखर पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने भगवान को श्रीपाद्चूड तथा दिव्यमहिषी आदि से विशिष्ट रूप में अनुभव किया। तब श्री भगवान ने भी तीर्थप्रसादादि देकर अर्चक द्वारा यह आज्ञा दी कि आप हमारे विषय में स्तोत्र बनावें। उस आज्ञा को शिरोधार्य बनाकर आचार्य ने श्री भगवान की दया के विषय में ''दयाशतक'' नामक स्तोत्र बनाया जिसमें प्रथम दशक में भगवान को मोक्षप्रदत्त्व(2) द्वितीयशतक में सर्वज्ञत्व आदि गुणा(3) तृतीय दशक में पापसंहारकत्व(4) चतुर्थदशक में प्रापकत्व। पंचम दशक में प्राप्यत्व (6) षष्ठदशक में भगवान की प्रपत्ति का ही साधन होगा(7) सप्तम में सौशील्यगुण(8) अष्टम में परत्व(9) नवम में भगवान का अवतार क्रम(10) और दशम दशक में अपेक्षित फल की प्राप्ति का वर्णन है। यह स्तोत्र द्वयमंत्र का विवरण रूप है। आचार्य श्रीवेंकटनाथ की इस स्तुति से भगवान श्री वेंकटनाथ प्रसन्न हो गये। वहाँ आचार्य कुछ दिन रहकर वहाँ के लोगों को विशेषार्थों का उपदेश देते हुये भगवान की लक्ष्मी की अभिवृद्धि के लिये भगवान की प्रपत्ति

करते थे।

अनन्तर श्री आचार्य वर के सहपाठी अद्वैतवादी आचार्य विद्यारण्य के साथ आप दोनों परस्पर मित्र व्यवहार था आप दोनों में यही अन्तर है कि श्री आचार्यवर जीवन भर गृहस्थ रहे और विद्यारण्य चरमावस्था में सन्यास ले लिए ये दोनों दार्शनिक और कवि थे एवं दोनों सौ वर्ष से भी अधिक सनातन धर्म की रक्षा किये विद्यारण्य एक कुशल राजनीतिज्ञ थे एवं श्रीआचार्यवर को राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था वेदान्त देशिक विद्यारण्यमुनि के सहपाठी और पुराने मित्र थे इसलिए विद्यारण्य उन्हें आदर और श्रद्धा की दृष्टी से देखते थे। एकबार जब विद्यारण्य के साथ माध्वमतावलम्बी अक्षोभ्य मुनि का शास्त्रार्थ हुआ तब भी मध्यस्थता के लिए श्री आचार्यवर को आदर के साथ बुलाया गया। परन्तु आचार्यवर नहीं गये तब आचार्यों ने अपने विचार उनके पास निर्णय पत्र लिखकर भेजे। उन दोनों के विचारों को मनन करते हुए आचार्यवर मध्यस्थता करते हुए एक श्लोक के द्वारा स्पष्ट करके भेजते है और बोलते हैं-

असिना तत्वमसिना परजीव प्रभेदिना।
विद्यारण्य महारण्य मक्षोम्यमुणिरच्छिनत्॥

इस श्लोक द्वारा आचार्यवर मध्यस्थता की

अपने पराजय के निर्णय से रूष्ट हो कर श्रीविद्यारण्य ने आचार्य को सन्देश भेजा कि मैं आप की ''शतदूषणी'' को खण्डन करूँगा, आप शतदूषणी भेज दें। आचार्य ने भी ''शतदूषणी'' भेज दी। श्रीविद्यारण्य को उस ग्रन्थ में कोई दोष नहीं दीख पड़ा,

केवल उनकी समझ में शतदूषणी में एक चकार अधिक था। अतः उन्होंने चकार पर चिपकी लगाकर भेज दिया। आचार्य ने उस चकार के समर्थन करने के लिये ''चकार समर्थन'' लिखकर श्रीविद्यारण्य को भेजा। उन्होंने उस को देखा तथा समझ लिया कि भगवान के घंटावतार आचार्य श्रीमद्वेङ्कटनाथ जी को जीता नहीं जा सकता। विजयनगर के राजा भी आचार्य का भक्त हो गया। अनन्तर श्रीमद्वेङ्कटनाथ जी की प्रसिद्धि सर्वत्र बढ़ने लगी। इस को सुनकर उत्तर देश के कृष्णमिश्र नामक पण्डित आचार्य से शास्त्रार्थ करने आया। आचार्य ने तीन दिन शास्त्रार्थ कर कृष्णमिश्र जी को हरा दिया। कृष्णमिश्र भग्न हो गया और उसने स्वनिर्मित **'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक** आचार्य को अनन्तर दिन दिखाने को कहा। आचार्य ने भी अनन्तर दिन ''**संकल्पसूर्योदय**'' दिखाने को कहा। आचार्य ने उनके ग्रन्थ को न देख के ही उसी के खण्डनात्मक उसी रात्रि में ''**सङ्कल्पसूर्योदय**'' नामक नाटक रचनाकर प्रातः नित्यकर्मानुष्ठान कर उस नाटक को श्रीकृष्णमिश्र को दिखाया। उसको देखकर श्रीकृष्णमिश्र आचार्य की अपार शक्ति को देख कर आचार्य को दिये हुए ''कवितार्किक सिंह'' उपाधि को सार्थक समझा। श्रीसुदर्शनभट्ट आदि इस अपारशक्ति से प्रसन्न थे।

इस प्रकार श्रीकृष्णमिश्र जी की हार को सुन कर डिमडिम नामक कवि ने आचार्य को स्वनिर्मित ''**रामाभ्युदय**'' नामक काव्य दिखाया। आचार्य ने भी उसको ''**यादवाभ्युदय**'' तथा ''**हंससन्देश**'' नामक काव्य बनाकर दिखाये जिससे

श्रीडिंडिम बहुत प्रभावित हो गया और आचार्य को कवितार्किकसिंह घोषित किया। अनन्तर आचार्य दक्षिण की यात्रा करते हुए कुम्भकोणं आदि दिव्यदेशों के जाने के अनन्तर श्रीधन्विनपुर जाकर वहाँ श्रीगोदाम्बा जी का दर्शन कर बहुत ही आनन्दित थे। तब श्रीगोदाम्बाजी ने कहा कि मेरे द्वारा रचित ''**तिरुप्पावै**'' के विशेषार्थो को न्यासविंशति आदि ग्रन्थों में प्रकाशित करने वाले आप ही हैं। ऐसा कहकर श्रीगोदाम्बा जी ने माला प्रसाद दिया। आचार्य ने ''**गोदास्तुति**'' बनाया और श्रीगोदाम्बा जी को सुनाया जिससे वे प्रसन्न हो गयी। अनन्तर आचार्य श्रीकुरुकापुरी जाकर श्रीशठकोप सूरि जी का दर्शन किया। सूरि जी ने आज्ञा दी कि हमारी श्रीसूक्ति के विशेषार्थो को प्रकाशित कराने वाले आप हैं; आप हमारी श्रीसूक्ति की व्याख्या करें जो कि श्रीकुरुकेश जी के 6000 संख्यक भगवद्विषय की व्याख्या हो। ऐसा कहकर माला प्रसाद आदि दिया। आचार्य ने सविनय उस आज्ञा को शिरसा धारण किया। अनन्तर आचार्य ''**तिरुवणंपरिशारम्**'' आदि दिव्यदेशों की यात्रा करते हुए श्रीरङ्ग पहुंच कर तिरुवेल्लरै, श्रीमुष्णं आदि दिव्यदेश जाते हुए श्रीकाञ्ची पहुंच कर श्रीमहादेवी तथा श्रीवरदराज भगवान का दर्शन कर अपने शिष्यों के साथ श्रीकाञ्ची में सिद्धान्त का प्रवचन करते रहे। उस समय एक महासमर्थ सपेरा, जो कि कुछ दुष्टों के दुर्बोधन के द्वारा बहकाया गया था, अट्टहास करते हुए आचार्य से कहने लगा कि मुझको आप जीत लें तभी आपका ''सर्वतन्त्र स्वतन्त्र'' बिरुद रह सकता है। आचार्य ने उससे बाद करना उचित नहीं सकझा, क्योंकि

आचार्य की दृष्टि में वह उनके असमान था। परन्तु शिष्यों ने उस को हराने की प्रार्थना की तदनुसार आचार्य ने जमीन पर सात रेखायें खींच दी और उस सपेरा से कहा कि अब अपने सर्पों के शौर्य को दिखाओ। उसने महाबलिष्ठ सर्पों को भेजा, परन्तु वे एक दो रेखाओं को पार करते ही मर गये। उससे क्रुद्ध होकर उसने उनसे भी बलिष्ट सर्पों को भेजा, परन्तु वे भी चार पांच रेखाओं को पार नहीं कर सके। अनन्तर उसने अपने बलिष्ट शंखपाल नामक सर्प को भेजा, जो कि सातों रेखाओं को पारकर आचार्य को काटने दौड़ा था। परन्तु आचार्य ने श्रीगरुड़ जी को स्तुति में '' **गरुड़दण्डक**'' को उसी क्षण बनाया। आकाश से महान् बलिष्ठ श्रीगरुड़जी आकर उस शंखपाल को ले भागे। इस से सपेरा का गर्वभङ्ग हो गया। उसने अपने सर्प को लौटा देने की प्रार्थना की। आचार्य ने पूर्वनिर्मित ''**श्रीगरुड़पञ्चाशत्**'' नामक स्तोत्र से गरुड़ जी की प्रार्थना की। गरुड़ जी ने उस सर्प को नीचे फेंक दिया। सपेरा भी आश्चर्य चकित हो गया और आचार्य को अहित करने की इच्छा से उससे अपार पीड़ा होने लगी। आचार्य उस समय तेल लगाकर बैठे हुए थे। आचार्य ने इस क्षुद्र को जानकर एक स्तंभ को चीरा, जिस से सभी पानी वह गया। स्मरण रहे कि ऐसी एक घटना एक अद्वैती सन्यासी के द्वारा घट चुकी थी। उससे भीत होकर सपेरा ने आचार्य से क्षमा मांगी। आचार्य अनन्तर श्रीवरदराज भगवान का मङ्गलाशासन कर श्रीवेङ्कटाद्रि आदि दिव्यदेशों की यात्रा करते हुए श्रीरङ्ग के मार्ग में श्रीगोपपुर के समीप में एक जङ्गल में एक वैश्य के घर पर

ठहरे हुए थे। उस दिन श्रीभगवान के भोग लगाने का उचित प्रबन्ध न होने से आचार्य श्रीहयग्रीव भगवान को तीर्थमात्र भोग लगाकर सोये थे। अर्द्धरात्रिमें वैश्य ने उठकर आचार्य से कहा कि एक सफेद घोड़ा हमारे चने को चर रहा है। आप कृपया उसको हटा दीजिये। आचार्य ने कहा कि जरा सा दूध लाओ, मैं अभी घोड़े को बांध देता हूँ। उस ने भी दूध लाया। आचार्य ने उस दूध को भगवान के भोग में लगाया, अपने शिष्यों के साथ स्वीकार किया और उस वैश्य से कहा कि अब वह घोड़ा तुम्हारे चने नहीं खायगा। वैश्य ने आचार्य को षाष्टाङ्ग प्रणिपात कर कहा कि मुझे अभी ज्ञात हुआ कि आप श्रीहयग्रीव भगवान के अर्चक हैं। ऐसा कह दूसरे दिन श्रीहयग्रीव भगवान को विशेषाराधन कराया। अनन्तर श्रीगोपपुर के भगवान का दर्शन कर श्रीमदहीन्द्रपुर जाकर वहाँ सिद्धान्त का प्रवचन करते रहे। वहाँ कुछ दुष्टों के दुर्बोधन से बहकाया हुआ एक शिल्पी आकर आचार्य से कहने लगा कि आप एक सुन्दर कुंआ बनाकर दिखायें तो ही सर्वतन्त्रस्वतन्त्र बिरुद रहेगा। आचार्य ने भी दुष्टों के दलन की इच्छा से तथा अपने प्रभाव को प्रकाशित करने की इच्छा से श्रीहयग्रीव भगवान के लिये अपने ही घर में शिल्पी के वर्णनानुसार कुंआ बना दिया। इससे शिल्पी भग्न हो गया और कहने लगा कि कुछ दुष्टों के दुर्बोधन से मैंने यह दृष्टता की है, आप कृपया मुझे अपना दास बनावें। आचार्य ने भी उसको शंखचक्र दिया और आज्ञा दी कि शास्त्र के व्यतिरिक्त विषय में कोई वाद करने आवे तो तुम उनको जीतो। कुछ दिनों के बाद श्रीदेवनायक

भगवान से बिदा लेकर वीरनारायणपुर पहुँच कर आचार्य ने श्रीमन्नाथमुनि स्वामी जी तथा राज गोपाल का दर्शन किया। श्रीमन्नाथमुनि जी ने कहा कि योगदशा में हमारे द्वारा श्रीशठकोपसूरि जी से प्राप्त मन्त्रमन्त्रार्थ तथा वेदान्त के विशेषार्थों का प्रकाशन आप ने ग्रन्थों के द्वारा किया है और श्रीशठकोपसूरिजी की आज्ञा का आप पालन करें। वहाँ से आचार्य तिरुवालिनगर पहुँच कर श्रीपरकालसूरि जी का दर्शन कर रहे थे। श्रीपरकालसूरि जी ने आज्ञा दी कि दिव्यप्रबन्धों के विशेषार्थों को प्रकट कर जो आपने महउपकार किया, इसका प्रत्युपकर नहीं हो सकता। ऐसा कहकर आचार्य को श्रीपरकालसूरि जी ने अर्चक के द्वारा माला प्रसाद आदि दिया, जिसको आचार्य ने सहर्ष स्वीकार किया। अनन्तर आचार्य श्रीरङ्ग पहुँच कर श्रीरङ्गनायिका समेत श्रीरङ्गनाथ भगवान का दर्शन कर शिष्यों को सिद्धान्त का प्रवचन करते थे। आचार्य के इस चरित्रवैभव को जानकर देशविदेश के श्रीवैष्णव लोग हर्ष से फूले न समा रहे थे तथा वे लोग आकर आचार्य से श्रीभाष्यादि ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। कुछ मितज्ञ साधु लोग, जिनका श्रीभाष्यादि ग्रन्थों में प्रवेश नहीं था, आचार्य से प्रार्थना करने लगे कि कृपया कुछ सरल ग्रन्थ बनाये जायँ। आचार्य ने सोचा कि पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिये उपाय आवश्यक है, उसके लिये तत्त्वज्ञान आवश्यक है। तत्त्वज्ञान के लिये सदाचार्य आवश्यक है। सदाचार्य के ज्ञान के लिये संप्रदाय में परिशुद्धि आवश्यक है। अतः आचार्य ने पहले **''संप्रदायपरिशुद्धि''** नामक ग्रन्थ बनाया। अनन्तर क्रम से **(1) तत्त्वपदवी (2) रहस्यपदवी (3)**

तत्त्वनबनीत (4) रहस्यनवनीत (5) तत्त्वमातृका (6) रहस्यमातृका (7) तत्त्वरत्नावली (8) तत्त्वरत्नावलीप्रतिपाद्यसंग्रह (9) रहस्यरत्नावली (10) रहस्यरत्नावलीहृदयम् (11) तत्त्वत्रयचुलकम् (12) सारसंक्षेप (13) सारसार (14) अभयप्रदानसार (15) तत्त्वशिखामणि (16) रहस्यशिखामणि (17) अञ्चलिवैभव (18) प्रध ानशतकम् (19) उपकारसंग्रह (20) सारसंग्रह (21) पग्मपदसोपानम्, इन ग्रन्थों को निर्माण कर तथा श्रीभाष्यकारस्वामी जी के भाव को अनेक ग्रन्थों से प्रकाशित करते हुए, तथा पञ्चकाल्परायण होकर अपने शिष्यों को भी सत्पथ में लाते हुए, भगवभागवताचार्यो के कैङ्कर्यपरायण होते हुए सिद्धान्त का प्रवचन करते रहे। समस्त जनता मानती थी कि आचार्य ने श्रीरामनुजसिद्धान्त को प्रतिष्ठित किया है और आचार्य ज्ञान, भक्ति, तथा वैराग्य के एक मूर्तिमान् रूप थे। इन सब अर्थो को श्रीप्रतिवादिभयङ्करचार्य ने ''**सप्ततिरत्नमालिका**'' में प्रकट किया है।

अनन्तर श्रीवीरवल्लिहस्तीशाचार्य ने, जो कि आचार्य के वैसे ही प्रथम शिष्य थे जैसे श्रीकूरेश जी भगवद्रामानुजार्य के शिष्य थे, वैराग्याधिक्य से सन्न्यासाश्रम देने की प्रार्थना की। आचार्य ने उनको प्रेष मूलमन्त्र के साथ सन्यास देकर उनका नामधेय ''**हस्तीशसंन्यासी**'' रख दिया। श्रीवीरवल्लिआचार्य तथा कोमाणडूरप्पै जी को भी आचार्य ने सन्न्यासाश्रम दे दिया तथा अनुरूप नाम रख दिया।

इस प्रकार गृहस्थ तथा सन्न्यासी शिष्यों को आचार्य संपदा ग्रन्थों का उपदेश देते रहे। उस समय आचार्य के प्रभाव को देखकर श्रीलोकाचार्य जी आचार्य के पास श्रीभाष्य तथा रहस्यार्थों को सुनते थे। उन्होंने आचार्य के विषय में एक द्राविड़गाथा लिखी है जिसका भावार्थ निम्नलिखित प्रकार है। **''श्रीवेङ्कनाथाचार्य (श्रीवेदास्तदेशिक जी) के द्वारा रचित ग्रन्थों में किसी एक को भी याद कर ले तो जीवन भर आनन्द ही आनन्द मिलेगा''**। आचार्य ने 30 से अधिक बार श्रीभाष्य का प्रवचन किया।

इस बात को सहज ही समझा जा सकता है कि उस समय द्रविण देश में उनकी विद्वता की कितनी प्रसिद्धी थी।

इस घटना से आचार्यवर की ख्याति चारों ओर फैल गयी सारे वैष्णवजन जानने लग गये और आचार्यवर से वैष्णवमत को सहजपूर्वक जनने के लिए ग्रन्थ की रचना के लिए प्रार्थना किए। श्री आचार्यवर की जीवन शैली बहुत ही साधारण थी वे कांची और श्री रङ़ क्षेत्र में विभिन्नमतावलम्बियों के साथ रहा करते थे एवं सभी लोग भक्ति एवं श्रद्धा के दृष्टि से उन्हें देखा करते थे उनकी नम्रता और साधारण जीवन शैली को जानने की इच्छा से (परीक्ष के लिए) एवं वैष्णव ने उन्हें घर आमन्त्रित किया। उस वैष्णव ने अपने घर के दरबाजे पर एक जोडा खड़ाऊँ लटका दिया था। जब श्री आचार्यवर घर घुसते समय खडाऊँ देखी तब उन्होंने खडाऊँ मस्तक से लगाकर कहा-

कर्मावलम्बकाः केचित् केचिज्ज्ञानावलम्बकाः।

वयं तु हरिदासानां पादरक्षावलम्बकाः।।

कुछ कर्म के आश्रय होते हैं कुछ ज्ञान के आश्रम वाले होते हैं 'किन्तु हम लोग भगवान् के भक्तों के चरणारविन्द के शरण लेने वाले हैं- श्री आचार्यवर की ऐसी हीनता, नम्रता को देखकर सभी वैष्णवकवितार्किकसिंह की उपाधि प्रदान की थी। इसी प्रकार श्री आचार्यवर के सहपाठी अद्वैतवादी विद्यारण्य जी विजयनगर के राजदरबार में कुछ उच्च पद पर पदस्थ थे। अतः उनकी कोई आर्थिक समस्या न थी। और वे अपने गृहस्थ जीवन बहुत ही सहज पूर्वक निर्वाह कर रहे थे पर श्री आचार्यवर कांचीपुरम रहकर बहुत ही विनम्रता एवं साधारण पूर्वक उञ्छ वृत्ति के द्वारा प्राप्त अन्न से अपनी गृहस्थ जीवन व्यतीत करते थे । अतः सभी कांचीवासियों को अवगत था की श्री आचार्यवर बहुत जिज्ञासु हैं अतः कोई भी व्यक्ति उनके पास शंका लेकर आता तो वे समाधान करते थे। अनन्तर आचार्य को भैक्षवृत्ति में देखकर श्रीविद्यारण्य ने जो कि विजयनगरम की राजकुमारी को ब्रह्मराक्षस आवेश से हटाकर उस राज्य के मंत्री हो गये। एक पत्र लिखा कि आप राज सभा में आ जायें। राजा भी आपका सेवक रहेगा। इस प्रकार गरीबी मिट जायेगी। परंतु आचार्य ने स्वीकार नहीं किया। और एक श्लोक लिख भेजा । वह यह है-

क्षोणीकाणशतांशपालनकलादुर्वारगरवानल-
क्षुभयत्क्षुद्रनरेन्द्रचाटुरचनाधन्यान्न मन्यामहे।
देवं सेवितुमेव निश्चिनुमहे योऽसौ दयालुः पुरा
धानामुष्टिमुचे कुचेलमुनये दत्ते स्म वित्तेशताम्॥

भावार्थ - पृथ्वी के छोटे-छोटे भागों पर शासन करने के दंभ से युक्त राजाओं की सेवा करना हम उचित नहीं समझते । परन्तु केवल श्री भगवान की ही सेवा करेंगे जिन्होंने थोड़े से चिड़वा देने वाले सुदामा के लिये ऐश्वर्य प्रदान किया था । श्री विद्यारण्य ने इस श्लोक के द्वारा आचार्य के वैराग्य को देखकर उन के वैराग्य को हटाने के लिये और एक समय आचार्य को राजसभा में उपस्थित होने के लिये पत्र लिखा। उनके उत्तर में आचार्य ने "**वैराग्यपंचक**" नामक पांच श्लोक लिख भेजे जिनसे श्रीविद्यारण्य बहुत ही आचार्य के विषय में प्रभावित थे।

वैराग्यपंचक का आन्तरिक भाव निम्न शब्द में व्यक्त किया जा सकता है, जो अहर्निश अपनी भोग हेतु क्षुद्र राज प्रमुख की विरदावली गावें हम तो उस दयासागर की अभ्यर्चना करें जिसने कुबेर की सम्पत्ति को उस कुचेल के प्रति समर्पित कर दिया एक मुठ्ठी भुने हुए तण्डुल से ही पूर्ण संतुष्ट है उस अन्न से जो स्वेच्छा से जो भिक्षापात्र में वीथियों में भगवद् गुण गान से स्वतः मिल जाता है। मेरा हाथ उन दुरिन्दवादियों के प्रति नहीं खुलता है क्योंकि मेरा धन तो धनंजय के रथ का सारथी अर्थात् श्री कृष्ण हैं। वैराग्य पंचक के चरम श्लोक में वेदान्तदेशिक स्वामी आन्तरिक रूप से अभिव्यक्त करते हैं। जिसमें श्री आचार्यवर का भाव है कि मेरे पिता किसी भी प्रकार की सांसारिक सम्पत्ति छोड़ कर नहीं गये तथा मेरे पास भी संसार की कोई भाग्य वस्तु नहीं हैं लेकिन मेरे पितामह ब्रह्मा के द्वारा संरक्षित

अमूल्य वस्तु है जो श्री हस्तिशैल पर विराजमान श्री वरदराज हैं। पांचवे श्लोक में श्री आचार्यवर धन शब्द का ग्यारह बार प्रयोग किये हैं। जो भिन्न-भिन्न अर्थों को व्यक्त करता है। यह श्री आचार्यवर की संस्कृत साहित्य पर विशेष शब्द विन्यास को प्रकट करता है। अतः श्री आचार्यवर अद्वैतवादी विद्यारण्य के लिए संदेश भेजने हेतु वैराग्य पंचक का रचना की।

श्री आचार्यवर की ऐसे वैराग्यपूर्ण सरल स्वभाव को देखकर विजयनगर व अन्य क्षेत्र के लोग उनकी परिहार करने के उद्धेश्य से दुर्दारियों ने सुनियोजित ढंग से एक ब्रह्मचारी जो अपने विवाह हेतु धन एकत्र कर रहा था यह कहकर भेजा कि श्रीआचार्यवर पर्याप्त धन की व्यवस्था कर देंगे। वह ब्रह्मचारी श्रीआचार्यवर के सम्मुख धन की याचना करने लगा। श्री आचार्यवर तत्क्षण महालक्ष्मी (पेरून्देण तैयार) के संनिधि में कनकधारा स्तव बनाकर पारायण करने लगे। माता जी की कृपा कटाक्ष से स्वर्णमुद्रा की वर्षा होने लगी जिससे ब्रह्मचारी प्रसन्न होकर भी आचार्यवर के प्रति प्रणिपात होकर चला गया। इस वृत्तान्त को सुनकर अद्वैतवादी आचार्य श्री विद्यारण्य बहुत प्रसन्न हुए एवं ईर्ष्यालुओं का मनोरथ भग्न हुआ।

श्री स्तुति में 25 श्लोक हैं जो महालक्ष्मी के प्रसन्नता हेतु हैं। जिसमें भगवान् नारायण की प्रधान महिमा है, लक्ष्मी एवं नारायण दिव्यदम्पत्ति हैं जो सृजन रक्षा एवं विश्व का कल्याण करते हैं सृष्टिकर्त्ता के रूप में ये दिव्यदम्पत्ति, रक्षक के रूप में शरण्यदम्पत्ति एवं शासक के रूप में शेष दम्पत्ति होते हैं। श्री

लक्ष्मी जी की आराधना तीन रूप में किया जाता है। काम्य अर्चा, भोग अर्चा, एवं लय अर्चा काम्य अर्चा के रूप में अलग सन्निधि में विग्रह के रूप में स्थापित की जाती है। जहाँ पर श्रद्धालु अपनी मनोवांच्छित फल को पाते हैं, भोग अर्चा में भगवान् के दायें पार्श्व में विराजती हैं एवं संसार की रक्षा करती हैं, लय अर्चा के रूप में भगवान् के बायें वक्षस्थल पर विराजमान होकर दुःखी जीवों के कल्याण हेतु कल्याण परक परामर्श भगवान् को देती हैं उनकी एक दृष्टि ही जीवों के धनी पवित्र गुणशाली बनाने के लिए पर्याप्त है, भगवान् के साथ उनकी अहर्निश सर्व दैशिक सर्व कालिक सम्बन्ध है माता (तैयार) जी की इस महिमा को श्री आचार्यवर भी स्तुति में व्यक्त किया है। दस श्लोकों में उनके स्वरूप का वर्णन है। ग्यारहवें से चौदहवें श्लोक तक उनके विग्रह का वर्णन है पन्द्रहवें श्लोक से उन्नीसवें श्लोक में **सर्वपुरूषार्थदायित्व** के रूप में वर्णन है और अन्तिम छटवें श्लोक में उनके प्रति समर्पण की विधियों का वर्णन है। श्री स्तुति की समाप्ति फल श्रुति से होता है जिसके पारायण से कलि कलुषित दोष का विध्वंस होता है एवं सर्वगुणसम्पन्न होता है।

श्रीवैष्णवों को उस समय कुदृष्टि विद्वान लोग श्रीरङ्ग में आकर कहने लगे कि अब यदि आप लोग श्रीरामानुज सिद्धान्त की स्थापना कर सकेगें तो ठीक है। अन्यथा आप लोगों को हमारे मत में आना पड़ेगा। ऐसा कहकर वे मन्दिर की व्यवस्था में हस्तक्षेप करने लगे। उस समय श्रीमत्कृष्णस्वामी, श्रीलोकाचार्य,

आदि श्रीवैष्णव लोग श्रीश्रुतप्रकाशिकाचार्य श्रीसुदर्शनभट्टाचार्य के पास षाष्टाङ्ग प्रणिपात कर प्रार्थना करने लगे कि क्या करना चाहिये। उन्होनें कहा कि इस सिद्धान्त के प्रवर्तक के रूप में श्रीवात्स्यवरदाचार्य ने श्रीवेङ्कटनाथ जी को आशीर्वद दिया, वे आज भगवत्कृपा से सिद्धान्त का प्रवचन कर रहे हैं, अतः उन्हीं के द्वारा सिद्धान्त की रक्षा होनी चाहिये। तदनुसार श्रीविष्वक्सेन भगवान की आज्ञा के रूप में एक श्रीमुखपत्र आचार्य श्रीवेङ्कटनाथजी को भेजा गया। आचार्य भी आज्ञा को शिरसा वहन कर सत्त्वर काञ्ची से चल पड़े। शीघ्र ही श्रीरङ्ग पहुँच कर कावेरी नदी में स्नान कर श्रीमदुत्तम भगवान का दर्शन कर श्रीरङ्गक्षेत्र को प्रणिपात कर आचार्य श्रीरङ्गधाम आ रहे थे। श्रीरङ्गमन्दिर के समस्त परिजनों ने हृदय से आचार्य का स्वागत किया। श्रीश्रुतप्रकाशिकाचार्य ने माला प्रसादादि देकर आचार्य को कहा कि आपके ही द्वारा श्रीरामानुजसिद्धान्त आज सुरक्षित रहेगा। आचार्य ने स्वीकार किया। तदन्तर मन्दिर की प्रदक्षिणा कर मन्दिर में प्रवेश कर जगन्माता श्रीरङ्गनायिका जी का दर्शन कर जगन्माता से श्रीरामानुजसिद्धान्त के विषय का आशीर्वाद लेकर अन्दर चन्द्रपुष्करिणों में स्नान कर प्रदक्षिणा करते हुए बलिपीठ के सामने षाष्टाङ्ग प्रणिपात कर श्रीमदरङ्गनाथ भगवान का दर्शन कर आचार्य आनन्द में विभोर थे। श्रीभगवान ने आचार्य को आज्ञा दी कि आप श्रीरामानुजसिद्धान्त को परपक्षों के निरसन के साथ प्रतिष्ठा कीजिये। आचार्य ने भी इस आज्ञा को स्वीकार किया तथा माला प्रसादादि लेकर महामण्डप में आचार्य कुदृष्टि

विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ विचार करने के लिये शिष्यों के साथ बैठे हुए थे। तब कुदृष्टि विद्वान लोग आये सात दिन तक शास्त्रार्थ विचार चला। प्रत्येक दिन के बाद को श्रीवरदाचार्य ने तालपत्र में उतार दिया था। आठवें दिन में आचार्य ने कुदृष्टियों को हरा दिया था और उस ग्रन्थ को संशोधन कर उसका नाम "**शतदूष्णी**" रखा। श्रीभगवान ने भी आचार्य को श्रीरङ्गमें रह कर सिद्धान्त प्रवचन करते रहने की और श्रीभगवान के परत्वादि गुणों को बतलाने वाले श्रीरामानुजसिद्धान्त को रक्षा करने की आज्ञा दी थी। श्रीसुदर्शनभट्टजी ने भी आचार्य को श्रीभगवान की आज्ञा को पालन करने को कहा। तदनुसार आचार्य श्रीरङ्ग में रह कर सिद्धान्त का प्रवचन कर रहे थे। एक दिन आचार्य के स्वप्न में आकर श्रीभवदरामानुजाचार्य ने आज्ञा दी कि आप सिद्धान्तप्रवचन के साथ सिद्धान्त की अभिवृद्धि के लिये ग्रन्थ रचना करें क्योंकि बाद की जनता के उज्जीवन के लिये ग्रन्थों की रचना आवश्यक है। ऐसे कह कर भगवद्रामानुजाचार्य ने अपने पादकमलों को आचार्य को प्रदान किया। अनन्तर श्रीआचार्यवर के श्रीभाष्यादिग्रन्थों में प्रवचन सामर्थ्य से प्रसन्न हो कर श्रीरङ्गनाथभगवान ने अर्चक के द्वारा आज्ञा दी कि आप को आज हम अत्यंतासाधारण "**श्रीवेदान्तदेशिक**" बिरुद दे रहे हैं। ऐसा कह कर श्रीभगवान ने माला प्रसादादि देकर श्रीआचार्यवर को सम्मानित किया। आचार्य ने सहर्ष तथा सविनय इस कृपा को स्वीकार किया। श्रीसुदर्शनभट्टाचार्य, श्रीमत्कृष्णाचार्य आदि लोगों ने कहा कि यही युक्त है। अनन्तर श्रीवेदान्तदेशिक जी

उपस्थित जनसमूह के साथ श्रीमद्रङ्गनायिका श्रीमहालक्ष्मीजी का दर्शन करने गये। श्रीमहालक्ष्मीजी ने आज्ञा दी कि आपमें सिद्धान्तनिर्वाह करने की क्षमता है, श्रीभगवान ने जो बिरुद दिया सो ठीक ही है, इससे श्रीसुदर्शनभट्टार्य आदि को बड़ी प्रसन्नता हुई। आचार्य ने भी स्वीकार किया। इस प्रकार श्रीभगवद्रामानुजाचार्य तथा दिव्यदंपति श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान के कृपापात्र होकर, श्रीरङ्ग में आचार्य श्रीरामानुजसिद्धान्त का प्रवचन करते रहे। श्रीवेदान्तदेशिक जी के प्रभाव को सुनकर देशविदेशों में से बहुत लोग श्रीरङ्ग आकर आचार्य के आश्रित हो गये। श्रीवेदान्ताचार्य को सभी लोगों ने एक अवतार विशेष ही समझा। इस बात को श्रीआचार्यवर ने भी अपने "**संकल्पसूर्योदय**" नामक नाटक में व्यक्त किया एवं श्रीप्रतिवादिभयङ्कराचार्य ने इन सब बातों का उल्लेख किया।

अनन्तर आचार्य ने श्रीरङ्गनाथ भगवान के विषय में "**भगवद्ध्यानसोपानं**" तथा '**भूस्तुति**' तथा '**श्रीनीलास्तुति**' श्रीपरकालसूरिजी के विषय में उपकार करने वाले श्रीदशावतारभगवान के विषय में **दशावतारस्तोत्र** बनाये। एक समय चैलमास के आर्द्रा नक्षत्र में, जिसमें भगवद्रामानुजाचार्य का अवतार हुआ था, श्रीभगवद्रामानुजाचार्य के दिव्यमङ्गलविग्रह और दिव्यगुण के दर्शन में आचार्य श्रीवेङ्कटनाथ जी (श्रीवेदान्तदेशिक जी) मुग्ध थे। उस समय वहां के लोगों को भी भगवद्रामानुजार्य का अनुभव आप के तरह हो जाय। श्रीभगवद्रामानुजार्य ने भी ऐसी ही आज्ञा दे दी। तदनुसार श्रीवेदान्ताचार्य ने

''**यतिराजसप्तति**'' नामक स्तोत्र बनाकर जी के सामने समर्पित किया। श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने भी प्रसन्न हो कर तीर्थ प्रसाद दिया। आचार्य ने उनको सविनय स्वीकार कर परमतों को खण्डन करते हुऐ श्रीरामानुजसिद्धान्त को स्थापित करने के लिये ''**तत्त्वमुक्ताकलाप**'', ''**सर्वार्थसिद्धि**'', ''**न्यायसिद्धाञ्जन**'', ''**न्यायपरिशुद्धि**'' ''**सेश्वरमीमांसा**'' ''**मीमांसापादुका**'' **तत्त्वटीका**'' ''**अधिकरणदर्पण**'' ''**अधिकरणसारावली**'' **हरिदिनतिलक**'' ''**भूगोलनिर्णय**'' तथा ''उसकी व्याख्या'' आदि ग्रन्थों का निर्माण किया, एवं श्रीभाष्यकारस्वामी जी को प्रगट करते थे। उस समय श्रीसुदर्शनभट्ट आदि विद्वानों ने आचार्य को '**कवितार्किकसिंह**' बिरुद प्रदान किया, क्योंकि उस समय कविता तथा शास्त्रों में आचार्य उञ्छवृत्ति के लिये गये हुए थे, उस समय श्रीमत्कृष्णस्वामी जी ने न्यासविद्या के विषय में आचार्य से कुछ विषय पूछे। तदर्थ आचार्य ने ''**न्यासविंशति**'' तथा ''**न्यासतिलक**'' बनाकर उनको दिया। उन्होंने इस विषय पर आचार्य से अनेक शंकाओं के समाधान पाया। आचार्य ने उन को सप्रमाण न्यासविद्या के विषय में उत्तर दिया। इस से श्रीमत्कृष्णस्वामी जी प्रसन्न हो गये और आचार्य को ''**भगवद्रामानुजाचार्य के कृपापात्र बताया**''। अनन्तर उन्होंने न्यासविद्या के अनुष्ठान के विषय में जिज्ञासा प्रगट की। आचार्य ने पूर्वनिर्मित ''**न्यासदशक**'' उनको दिखाया जिससे वे प्रसन्न हो गये। अनन्तर आचार्य श्रीवेदान्तदेशिक जी ''**सच्चरित्ररक्षा**'' ''**श्रीपाञ्चरात्ररक्षा**'' ''**गीतार्थसंग्रहरक्षा**'' ''**निक्षेपरक्षा**''

"**रहस्यरक्षा**" आदि ग्रन्थों को बनाकर सिद्धान्तप्रवचन कर रहे थे। उनके नाम "**श्रीवेदान्तदेशिक**" **कवितार्किकसिंह**" "**सर्वतन्त्रस्वतन्त्र**" बहुत ही सार्थक हो गये।

अनन्तर एक दिन आचार्य के घर में उनके पिता श्रीमदनन्तसूरि जी का श्राद्ध था। उसमें ब्राह्मण आमंत्रित हो चुके थे। कुछ दुष्ट ईर्ष्यालु लोगों ने कुछ ब्राह्मणों को धन देकर लौटा दिया। अन्य लोगों को जिस में श्रीहस्तीशसन्न्यसी आदि थे, मायिक चूर्ण खिला कर मूर्छित करा दिया। वे देख रहे थे कि आचार्य अब क्या करेंगे। आचार्य भी प्रहलाद के तरह निश्छल थे और सदाचार्य के अनुग्रह से निर्भर थे, केवल चिन्ता थी कि भगवान् इस प्रकार क्यों परीक्षा कर रहे हैं। अनन्तर आचार्य माध्यानकालिक स्नान तथा नित्यकैङ्कर्य कर, कुलदेवता श्रीवरदराज भगवान, स्वप्नलब्ध श्रीलक्ष्मीहयग्रीवभगवान् का विशेषाराधन कर, होम आदि कर कदलि पत्र में समस्त भोग्य पदार्थों का परिवेषण कर, कूर्चावाहित देवापितृवैष्णवों को बानादि कर दैवपितृवैष्णव सूक्तों का जप कर रहे थे। अनन्तर आचार्य ने पत्रस्थित अन्न को देखा तो अधिक मात्रा में अन्न श्रीभगवान ने स्वीकार कर लिया था। इस से आचार्य को बड़ा सन्तोष हुआ। अनन्तर आचार्य ने कूर्च में आवाहित देवपितृ विष्णुओं का उद्वासन कर, तीर्थादि स्वीकार किया। पास के असूयालु लोगों ने देखा कि तीन अपूर्व श्रीवैष्णव ठीक मध्यान्ह में आकर तैल लगाकर, श्राद्ध में निमन्त्रित होकर, प्रसाद स्वीकार कर, उद्वासित होकर बाहर ताबुंल का सेवन करते हुये मन्दिर की प्रदक्षिणा करते हुये

जा रहे थे। ईर्ष्यालु लोग आचार्य से पूछने लगे कि वे तीन श्री वैष्णव कौन थे। आचार्य ने संतुष्ट होकर कहा कि वे तो श्रीरंगनाथ श्री बरदराज तथा श्री वेंकटेश भगवान है। ईर्ष्यालु लोगों ने पश्चाताप पाकर क्षमा मांगी। अनन्तर निमंत्रित ब्राह्मणों ने भी क्षमा मांगी और शिष्य लोग भी स्वस्थ होकर तीर्थ स्वीकार करने लगे। आचार्य यथापूर्व नित्यकैंकर्य तथा सिद्धांत का प्रवचन कर रहे थे। एक दिन आचार्य श्री रंगनाथ भगवान को दर्शन करने गये उस दिन एकादशी तिथि थी कुछ दुष्टों ने अर्चकों को धन देकर उनसे आचार्य को तीर्थ के साथ मुद्‌गान्न (पोंगल) दिला दिया। आचार्य ने मुद्‌गान्न (पोंगल) लिया और भगवान से प्रार्थना की आपने शास्त्रों में आदेश दिया है कि एकादशी में उपवास करो। और अब आप आदेश दे रहे हैं कि मुद्रान्न को स्वीकार करो। मैं किस आदेश का पालन करुँ? श्रीभगवान ने एक अर्चक में आविष्ट होकर कि मैंने ऐसा आदेश नहीं दिया है। वह अर्चक ही षाष्टांग प्रणिपात कर श्रीआचार्यवर से कहने लगा कि मैंने द्रव्य लाभ से ऐसा किया। आप क्षमा करें। तब से जनता समझने लगे कि आचार्य श्री वेंकटनाथ जी का अनुष्ठान ही श्रीरंगनाथ भगवान की अभिमत है।

एक दिन आचार्य उञ्छवृत्ति के लिये बाहर गये थे। उस समय एक वैष्णवे ने, जो कि आचार्य के विषय में अत्यन्त भक्त थे, चावल के साथ साथ कुछ स्वर्ण के चावल आचार्य के पात्र में डाल दिये थे। घर आने के बाद आचार्य जी ने चावल शोधन किया और स्वर्ण चावलों को देख कर वह नहीं समझ पायी थी

कि वह क्या चीज है। आचार्य की पत्नि ने आचार्य से उन स्वर्ण चावलों को दिखाया। आचार्य ने कहा कि ये कीड़े हैं। ऐसा कह कर उन्हों ने एक डंडे से उन स्वर्ण चावलों को हटा दिया। इस प्रकार के आचार्य के परमवैराग्य को देख कर जनता समझने लगी कि यह एक अवतार विशेष हैं।

एक समय आचार्य श्रीरङ्गमन्दिर गये हुए थे। उसी समय श्रीमल्लोकाचार्य जी के अनुजभ्राता श्रीसौम्यजामातृनयिनारस्वामी जी, वहां आये और श्रीरङ्गनाथभगवान की सन्निधि में कहने लगे कि आज रात्रि में जो हजार श्लोक बनावेगा, वही कवितर्किकसिंह हो सकता है, अन्यथा नहीं। श्रीरङ्गनाथभगवान ने भी उसी प्रकार 1000 श्लोक बनाने के लिये दोनों को आज्ञा दी। श्रीसौम्यजामातृ जी ने कहा कि हम ''**पदकमलसहस्त्र**'' बनायेंगें। आचार्य ने कहा कि हम ''**पादुकासहस्त्र**'' बनायेंगे। ऐसा कह कर दोनों अपने अपने आवास पर चले गये। श्रीसौभ्यजामातृ जी घर आकर बहुत कठिनाई से रात भर में 300 श्लोक बना सके। आचार्य अपने घर जाकर रात्रि के प्रथम प्रहर में नित्यकैङ्कर्योंको पूरा कर द्वितीययाम में ''**पादुकामहस्त्र**'' ग्रन्थ को पूरा कर, तृतीययाम में आराम करते थे। चतुर्थयाम में प्रातः कालीन नित्यकैङ्कर्य कर भगवान के मन्दिर में आचार्य उपस्थित हो गये। श्रीसौम्यजामतृ स्वामी जी भी आ गये। श्रीभगवान ने अपने 2 ग्रन्थों को पढ़ने को कहा। आचार्य ने अपने मेघगंभीर स्वर से ''**पादुकासहस्त्र**'' को पढ़ा। परन्तु श्रीसौम्यजामातृस्वामी जी लज्जा से अवोमुख हो गये, क्यों

कि वे हजार श्लोक पूरा न कर सके। श्रीभगवान ने आचार्य को कवितार्किकसिंह सिद्ध किया तथा तीर्थ माला प्रसाद आदि देकर सम्मानित किया। श्रीआचार्यवर संतुष्ट हुए और श्रीसौम्यजामातृस्वमी जी के शोक के हरण के लिये उन्होंने एक श्लोक लिखा

'सूते सूकरयुवतिः सुतशतमत्यन्तदुभगं झटिति।
करिणी चिराय सूते सकलमहीपाललालितं कलभत्॥"

अर्थ - सुअर अतिशीघ्र हो अत्यन्त दुर्भग सैकड़ों बच्चे दे देती है। परन्तु हथिनी बहुत समय के अनन्तर ऐसे शिशु को पैदा करती है जो कि समस्त राजाओं से सम्मानित होता है।

आचार्य के इस नैच्यानुसंधान से उपस्थित समस्त लोग प्रसन्न हो गये। अनन्तर आचार्य ने श्रीभगवान से प्रार्थना की कि श्रीरामानुजसिद्धान्त में असूया से कुछ हानि न हो। एतदर्थ आचार्य ने यह श्लोक कहा-

"आपादचूडमनपायिनि दर्शनेऽस्मि-
न्नाशासनीसमपरं न विपक्षहेतोः।
आपातशान्तिमधुरान्पुनरस्मदीया-
नत्योन्यबैरजननी विजहात्वसूया॥"

अर्थ-पाद से लेकर चोटी तक जिस सिद्धान्त में कोई दोष नहीं है वैसे श्रीरामानुजसिद्धान्त की रक्षा के लिये आप से कुछ नहीं मांगना (क्यों कि वह स्वयं दृढ़ है) आपात शान्ति से मधुर

श्रीवैष्णवों में आपस में असूया न हो जो कि विद्वेष की जननी है। तब से लेकर श्रीसौम्यजामातृस्वामी जी आदि लोग भी आचार्य के विषय में निष्ठावान हो गये।

अनन्तर एक रात्रि में स्वप्न में श्रीशठकोप सूरि जी ने आचार्य को कहा कि आप हमारी आज्ञा का पालन कीजिये। आचार्य ने अनन्तर श्रीकुरुकेश जी के व्याख्यानानुसार दिव्यप्रबन्धों के सारों का उल्लेख करते हूए श्रीशठकोपसूरि जी की श्रीसूक्तियों की व्याख्या की जो कि 74000 श्लोक के परिमाण में थी अनन्तर मुनिवाहनसूरिजी की सूक्तियों का ''**मुनिवाहनभोग**'' मधुर कवि जी की श्रीसूक्तियों का ''**मधुरकविहृदयम्**'' संस्कृत भाषा में ''**द्रमिडोपनिषत्सार**'' ''**द्रमिडोपनिषत्तात्पर्यरत्नावली**'' **द्राविडगाथाओं में** ''**तिरुमन्त्रञ्चुरुक्कु**'' ''**द्वयच्चुरुक्कु**'' ''**चरमश्लोकच्चुरुक्कु**'' ''**गीतार्थसंग्रहच्चुरुक्कु**'' ''**आहारनियम**'' नामक ग्रन्थ बनाकर आचार्य श्रीशठकोपसूरि तथा श्रीमन्नाथमुनि जी की आज्ञाओं का पालन कर उनको प्रसन्न कर सिद्धान्त का प्रवचन करते थे।

उस समय तैलंग देश में सर्वज्ञशिगप्पनायक राजा था। वह आचार्य का शिष्य तथा आचार्य के पारमैकान्त्य से प्रभावित था। उसने कुछ श्रीवैष्णवों को भेजकर आचार्य से प्रार्थना की कि कुछ विशेषार्थो का उपदेश भेजा जाय। आचार्य उसकी चित्तशुद्धि से प्रसन्न हो गये और उन्होंने उपदेश के रूप में ''**सुभाषितनीवी**'' ''**तत्त्वसन्देश**'' ''**रहस्यसन्देश**'' ''**रहस्यसन्देशविवरण**'' ग्रन्थ बनाकर भेजा और एक श्लोक भेजा। वह यह है-

"सत्त्वस्थान्निभृतं प्रसादय सदां वृत्तिं व्यवस्थापय त्रस्य ब्रह्मविदागसस्तृणमिव त्रैवर्गिकान् भावय।

नित्त्ये शेषिणि निचिपत्रिजभरं सर्ष सहे श्रीसखे धर्म धाग्य चातकस्य कुशलिन्धाराधरैकान्तिनः॥"

अर्थ-हे कुशलिन् राजन्। सात्त्विक लोगों को अच्छे रूपसे प्रसन्न रखो, अच्छे लोगों की वृत्ति की व्यवस्था करो, ब्रह्मबेत्ता लोगों के अपचार से डरो, त्रिवर्ग में लगे लोगों को तृण के समान समझो, अपनी रक्षा के भार को सर्वशेषी तथा सर्वसह श्रीमन्नारायण के चरणों में समर्पित कर मुक्ति के लिये भगवान के विषय में इतनी उत्सुकता रखो, जितना कि एक चातक पक्षी मेघ के विषय में रखता है। सर्वाज्ञशिंगप्पनायक ने बड़े वाद्यघोष तथा उत्सव के साथ श्रीआचार्यवर के श्रीमुखपत्र का स्वागत किया। श्रीमुखपत्र बाँच कर बहुत संतुष्ट हुआ और तदनुसार अपना अनुष्ठान भी कर रहा था। इससे आचार्य की महिमा व्यक्त होती है।

आवणो मासि रोहिण्यां जातं वेङ्कटदेशिकात्।

विश्वामित्रान्वयाब्धीन्दु वरदार्यमहं अये।

इस प्रकार अटक से कटक तक तथा सेतु से हिमाचल तक प्रसिद्ध तथा भगवद्दयापात्र कवितार्किकसिंह आचार्य श्रीवेङ्कटनाथ देशिक जी को श्रीवदराजभगवान ने स्वप्न में आकर आज्ञा दी कि आप को हमारा अंश एक पुत्र उत्पन्न होगा, उसको हमारा नाम ही रखिये। इसके पूर्व आचार्य अपनी तुल्यसुशीलबयोवृत्ता धर्मपत्नी के साथ भी ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। अब श्रीवरदराजभगवान की आज्ञा के अनुसार

आचार्यपत्नी गर्भिणी हो गई। आचार्य को कलि के 4418 वें नलवर्ष में श्रावणमास में रोहिणी नक्षत्र मे एक पुत्र अवतीर्ण हुआ। आचार्य वर ने उस शिशु का जात कर्म कर वरद नाम रखा। अनन्तर अन्नप्राशन, चौल, उपनयन कर, अक्षरारम्भ से लेकर वेदवेदाङ्गों तथा श्रीमन्त्रमन्त्रार्थों का भी आचार्य ने स्वयं उपदेश दिया।

श्रीवरदाचार्य भी अतिमेधावी थे क्योंकि वे श्रीभगवान का एक अंश ही थे। अनन्तर आचार्य के पास वरदाचार्य श्रीभाष्य का कालक्षेप करने लगे। पहले आचार्य की महिमा का वर्णन के लिये श्रीहस्तीशाचार्य ने "**नमःपदमिदं भूयात्**" श्लोक बनाया था। अब कलि के 4430 वें विभववर्षके चैत्रपुनर्वसू नक्षत्र में श्रीभाष्य के कालक्षेप के प्रारम्भ में श्रीवरदाचार्य ने यह श्लोक बनाया था-

"**श्रीमान्वेङ्कटनाथार्यः कवितार्किककेसरी।**
वेदान्ताचार्यवर्यो मे संनिधत्तां सदा हृदि॥"

अर्थ - श्रीमान् कवितार्किकसिंह, वेदान्त के श्रेष्ठ आचार्य, श्रीवेङ्कटनाथार्य जी हमारे हृदय में सर्वदा उपस्थित हैं।

श्रीसुदर्शनभट्ट आचार्य आदि लोगों ने इसी तनियन् श्लोक को कालक्षेप के आरम्भ में कहने के लिये कहा। आचार्य ने उनकी उक्ति को स्वीकार किया और वे श्रीवरदाचार्य पर सन्तुष्ट थे। इससे श्री हस्तीशाचार्य आदि वयसा जेष्ठ लोगों ने भी श्रीवरदाचार्य पर उसी प्रकार प्रतिपत्ति की जिस प्रकार श्रीकुरेश जी आदि लोगों ने श्रीकुरुकेशाचार्य पर की थी।

एक दिन आचार्य अपने गृह के बाहर वेदिका में बैठ कर ग्रन्थों का अवलोकन कर रहे थे। उस समय कन्दाडै लक्ष्मणाचार्य नामक शिष्यसंम्पत्ति में समृद्ध श्रीवैष्णव अपने शिष्यों के साथ शिबिका में बैठकर आचार्य के घर के पास की रास्ते पर जा रहे थे। आचार्य उनको नहीं देख सके क्यों कि ग्रन्थावलोकन में मग्न थे। लक्ष्मणाचार्य के शिष्यों ने आचार्य के पैर खींच कर रास्ते में गिरा दिया। आचार्य ने भी देखा कि हमने गलती की है। क्योंकि एक ब्राह्मणोत्तमः को रास्ते में जाते प्रणाम नहीं किया है। ऐसा समझ कर कुछ दूर पर गये हुए श्रीलक्ष्मणाचार्य को षाष्टाङ्ग प्रणाम कर अपनी भूलपर आचार्य ने क्षमा मांगी। अनन्तर आचार्य शिष्यों के साथ श्रीरङ्ग छोड़कर श्रीभगवद्रामानुजाचार्य की तरह एक विशेषता उत्पन्न करने के लिये यादवाद्रि के श्रीनारायण भगवान के दर्शन की अभिलाषा से सत्यमङ्गल नामक ग्राम पहुचं कर वहां रहने लगे ओर उस ग्राम के पास रहने वाली कावेरीनदी के तट पर स्थित श्रीवरदराजभगवान के मन्दिर में शिष्यों का श्रीभाष्य कालक्षेप कराते थे। उस समय श्रीलक्ष्मणचार्य को पता नहीं था कि उनके शिष्यों ने आचार्य के पाद पकड़कर गिरा दिया तथा आचार्य ने उन से क्षमा मांगी थी। श्रीलक्ष्मणचार्य को देह में वैवणर्य हो गया जिस से उन की कोई सन्तान न होता था। उनकी पत्नी ने कहा कि क्या आप ने भागवतापचार किया। उन्होंने कहा कि ऐसी बात नहीं पत्नी ने पूछा कि क्या आप के शिष्यों ने कुछ अपराध किया है? शिष्यों को पूछताछ करने पर पता लगा कि उन्हों ने आचार्य का पैर पकड़कर खींच दिया और इसी कारण

आचार्य सत्यमङ्गल जाकर आचार्य से सभी बातें कह कर अपने शिष्यों के द्वारा किये गये अपराधों की क्षमा उन्होंने मांगी। अनन्तर उस दम्पत्ती ने आचार्य का भी पादतीर्थ की महिमा से श्रीलक्ष्मणाचार्य की पत्नी गर्भिणी थी। आचार्य ने वहीं कुछ दिन ठहरने की बात कही। वह दंपती फिर श्रीरङ्ग लौट कर आचार्य की महिमा का वणन कर रहे थे। उस समय उनको एक पुत्र हुआ उन को आचार्य के तीर्थ प्रभाव के कारण उत्पन्न होने से तीर्थ कुमार नाम रखा गया।

अनन्तर आचार्य श्रीरङ्ग का स्मरण कर अपने पुत्र श्रीवरदाचार्य तथा अपनी देवी को सत्यमङ्गल में ही ठहरा कर स्वयं श्रीरङ्ग पहुंच कर सिद्धान्त का प्रवचन कर रहे थे। उस समय उत्तर देश से एक महाविद्वान आचार्य से शास्त्रार्थ करने आये। उनकों जीतने के लिये आचार्य ने हस्तीशाचार्य को भेजा। हस्तीशाचार्य ने भी शतदूषणी की युक्ति तथा उपनिषदों के प्रमाण से उस विद्वान को तीन दिन के बाद में हरा कर उस से आचार्य का प्रणाम कराया। इस वादप्रणाली को सुन कर आचार्य ने हस्तीशाचार्य को ब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्रस्वामी नाम दिया जिस को श्रीसुदर्शनभट्ट आदि विद्वानोंने भी स्वीकार किया। इस प्रकार अजेय शिष्यमण्डली विशिष्ट आचार्य को देखकर कुछ असूयालु लोग कुढ़ जाते थे। इन सब बातों को श्रीप्रतिवादिभयङ्कराचार्य ने अच्छी तरह वर्णन किया।

इस प्रकार श्रीभगवद्रामानुजाचार्य के द्वारा विरचित गद्यत्रय में प्रतिपादित शरणागति का अनुष्ठान कराने वाले आचार्यवैभव

की सहन न कर, कलिपुरूष ने कुछ लोगों में आविष्ट हो कर सन्त लोगों को कष्ट दिया।

अनन्तर कलि 4438 वें धातुवर्ष में मीनमास में ब्रह्मोत्सब में श्रीरङ्गनाथभगवान कावेरीतट में एक मण्डप में बिराजमान थे। उस समय एक श्रीवैष्णव ने भगवान् से प्रार्थना की कि इस श्रीवैष्णवमण्डली के साथ तत्क्षण हम को भी वैकुण्ठ देकर अपना दर्शन इसी प्रकार दें। ऐसा कह कर अङ्गपञ्चक संपत्र प्रपत्ति की। श्रीभगवान ने समझा कि यदि इन सबको एकदम मुक्ति न दें तो इस श्रीवैष्णव की प्रपत्ति व्यर्थ तथा झूठी हो जायेगी अतः सब श्रीवैष्णवों को एक दम वैकुण्ठ दे देना चाहिये। उस समय तुर्कों की सेना, जो कि उस स्थल के नाश के लिये आई थी, उस स्थल में विजयध्वज फहरा रही थी। श्रीरङ्गमन्दिर के अधिकारी लोग श्रीरङ्गनाथ भगवान को पत्थर की परदा डालकर दूसरे विग्रह को यवनों को दिखा कर, श्रीरङ्गनाथ भगवान व श्रीरङ्गनायिका देवी को सन्दूक पर बैठाकर जङ्गलो के अन्दर ले गये। तुरुष्कसेनाने श्रीवैष्णवों पर दानवीय अत्याचार किया था। उस समय श्रीवेदान्तदेशिकाचार्य उस देश के बाहर श्रीभगवान के साथ जा रहे थे। आचार्य को बुलाकर श्रीसुदर्शन भट्ट जी ने अपने दो पुत्र तथा श्रुतप्रकाशिका ग्रन्थ को उनको सौंप दिया और कहा कि आप श्रुतप्रकाशिका का प्रचार करावें और इनको सुरक्षित रूप से बाहर ले जाकर वृद्धिगत करावें। आचार्य स्वीकार कर उनको अपने साथ ले चले। यवन लोगों ने नगर में लूट और हत्या का बाजार गर्म कर रखे थे। उनकी दृष्टि से बच कर

श्रीरङ्गसे निकलना दुष्कर था अतः उन्होंने उस श्रुतप्रकाशिका ग्रन्थ का बालू के अन्दर गाड़ दिया और वे स्वयं उन लड़को के साथ दिन भर लाशों के ढेरों के बीच छिपे रहे। रात्रि में यवनों की दृष्टि से बचाते हुए आचार्य इन लड़को के साथ बाहर निकल कर महारण्य पहुंच गये और वहीं विश्रान्ति करते रहे। श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्रस्वामी जी आचार्य को ढूंढते हुए श्रीरङ्गनाथ भगवान के साथ चल रहे थे, परन्तु वे वहाँ आचार्य को न पा सके। इस से वे दुःखी थे। परन्तु दैवयोग से श्रीरङ्ग लौटते हुए वे भी उसी अरण्य में आये और आचार्य के दर्शन से परम संतुष्ट हो गये। अनन्तर श्रीसुदर्शनभट्ट जी को आज्ञा को पूरा करने के लिये आचार्य सत्यमङ्गलग्राम पहुंचे और उन लड़को को उपनयन से लेकर, सामान्यशास्त्र, विशेषार्थो का उपदेश तक आचार्य ने किया और श्रुतप्रकाशिका का संशोधन कर प्रवर्तन करा रहे थे। श्रीरङ्गनाथभगवान कुछ दिन तक तिरुमाउशोले में रह कर पश्चिमदेशों के द्वारा श्रीवेङ्कटाचल पहुंच गये और वहीं नित्यकैङ्कर्यों तथा उत्सवों का अनुभव करते रहे। श्रीसुदर्शनभट्ट जी, श्रीसौम्यजामातृनयिनार जी तुर्कों की इस बर्बरता से वैकुण्ठ पधार गये। श्रीमल्लोकाचार्य कुछ दूरी तक श्रीरङ्गनाथभगवान का अनुगमन करते रहे, परन्तु मार्गमध्य में ही तुरुष्कहिंसा से दूसरे ही दिन वैकुण्ठको पधारे।

अनन्तर आचार्य अपने कुटुम्बके साथ श्रीभाष्यकार स्वामी जी के अभिमत तिरुनारायण पुर पहुँच कर श्रीभाष्यकार स्वामी जी का दर्शन कर, श्रीमन्नारायण भगवान्, तथा श्रीसंपत्कुमार

भगवान् तथा श्रीयदुगिरि महालक्ष्मीजी का दर्शन कर रहे थे। तब श्रीसंपत्कुमार भगवान ने आचार्य को माला प्रसाद आदि से संमान कर कहा कि हमारे परत्त्व को श्रीभाष्यादि ग्रन्थों के द्वारा स्थापित करने वाले श्रीभगवद्रामानुजाचार्य के मत को आपने अपने बादग्रन्थों से सुरक्षित कर दिया है। आचार्य ने सहर्ष संमान स्वीकार किया था तथा श्रीभाष्यकार स्वामी जी के द्वारा स्थापित उन की मूलमूर्ति तथा श्रीभाष्यकार जी के द्वारा अपने वैकुण्ठवास के पहले आलिङ्गित कर श्रीप्रखतार्तिहर जी को दी तथा उन में प्रतिष्ठित उत्सवमूर्ति का दर्शन किया। श्रीभाष्यकार स्वामी जी ने अर्चक के द्वारा कहा कि आप के लिये, जो कि दिव्यदंपती की कृपा के पात्र है, योग्य समान क्या होगा आप के पुत्र श्रीवरदाचार्य अपने सिद्धान्त के अच्छे प्रवर्तक होगे ऐसा कहकर भगवद्राष्यकार जी ने माला आदि सम्मानित किया। आचार्य भी श्रीबरदाचार्य पर कृपा दृष्टि रखने लगे। आचार्य श्रीभगवान के कैङ्कर्य करते हुए वहीं रह गये थे। तब श्रीवरदाचार्य आचार्य से श्रीभगवद्विषय का कालक्षेप करते थे। परन्तु ब्रह्मतन्त्र स्वामी जी कालक्षेप नहीं करते थे। आचार्य ने कारण पूछा। उन्होंने कहा कि श्रीभगवद्रामानुजाचार्य के विशेष कृपापात्र श्रीवरदाचार्य जी में सहपाठिता को समझना नहीं चाहते, बचे हुए श्रीभगवद्विषय को श्रीवरदाचार्य में अध्ययन कर उनके शिष्य बनकर रहना चाहते हैं, आप भी इसका आज्ञा देने को कृपा करें। श्रीब्रह्मतन्त्र स्वतन्त्र जी तथा सभी शिष्योंने यही इच्छा प्रगट की। आचार्य ने भी स्वीकार किया तथा श्रीवरदाचार्य को उनको श्रीभगवद्विषय के

उपदेश देने की आज्ञा दी। कलि के 4440 वें बहुधाम्यवर्ष में श्रावणमास में शुक्लद्वितीया समेत हस्त नक्षत्र में जब श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्र स्वामी जी ने श्रीवरदाचार्य के पास श्रीभगवद्विषय का कालक्षेप आरम्भ किया, तब उन्हों ने श्रीवरदाचार्य का तनियन श्लो कहा। वह श्लोक निम्नलिखित है।

''श्रीमल्लक्ष्णयोगीन्द्र सिद्धान्त विजयध्बजम्।
विश्वामित्रकुलोद्भतं वरदार्यमहं भजे॥''

अर्थ – श्रीमद्भगबद्रामानुजसिद्धान्त के विजयध्वजरूपी, तथा विश्वामित्रकुल में अवतीर्ण श्रीवरदाचार्य का मैं भजन करता हूँ। अनन्तर अपने प्राचार्य श्रीवेङ्कटनाथ जी का तनियन् ''**श्रीमान्वेङ्कटनाथः**'' श्लोक का अनुसंधान कर, श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्र जी ने प्राचार्य श्रीवेङ्कटनाथ जी (वेदान्तदशिकस्वामी जी) के विषय में इस तनियन श्लोक का अनुसंधान किया–

''रामानुजदयापात्रं ज्ञानवैराग्यभूषणम्।
श्रीमद्वेङ्कनाथर्य वन्दे वेदान्तदेशिकम्॥''

अर्थ – श्रीभगवद्रामानूजाचार्य तथा श्रीमदात्रेयरामानुजाचार्य के कृपापात्र तथा ज्ञान एवं वैराग्य रूपी आभरणों से अलङ्कृत, श्रीवेदान्ताचार्य, श्रीवेङ्कटनाथदेशिक जी का वन्दन करता हूँ॥

इस समाचार को शिष्योंके द्वारा पा कर आचार्य कहने लगे ''**श्रीमान्वेङ्कनाथार्यः**'' यह श्लोक हमारी महिमा को प्रगट

करता है और "**रामानुजदयापात्रम्**" वह श्लोक हमारे ऊपर सदाचार्यों के अनुग्रह को बताता है, अतः दोनो श्लोक अच्छे हैं। उस समय शिष्यों ने पूछा कि तो भी कालक्षेप के समय किस श्लोक का अनुसंधान करना चाहिये? आचार्य ने कहा कि "**श्रीमान्वेङ्कटनाथार्यः**" इस श्लोक को, जोकि श्रीभाष्यकालक्षेप में आविर्भूत है, श्रीभाष्यादि संस्कृत ग्रन्थों के कालक्षेप के समय अनुसंधान करना चाहिये और "**रामानुजदयापात्र**" इस श्लोक का, जो कि भगवद्विषय के कालक्षेप में प्रकट हुआ है, अनुसंधान द्राविडग्रन्थों के कालक्षेप के समय करना चाहिये। इस व्यवस्था से वहां के सज्जन बहुत प्रसन्न थे। अनन्तर श्रीवरदाचार्य श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्राचार्य आदि शिष्यों को श्रीभगवद्विषण कालक्षेप कराते रहे। आचार्य (श्रीवेदान्तदेशिकस्वामी जी) श्रीयादवाद्रिस्थ श्रीमन्नारायणभगवान, श्रीसंपत्कुमारभगवान् और श्रीलक्ष्मीनरसिंहभगवान् का दर्शन कर श्रीयादवाद्रि की शोभा की वृद्धि के लिये उस दिव्यदेश का मङ्गलाशासन कर वहां से विदा हो कर श्रीसत्यमङ्गलग्राम पहुँच कर वहां शिष्यों को दर्शन का उपदेश देते रहे। तब श्रीरङ्गनाथभगवान के विरह न सह सकने के कारण आचार्य ने "**अभीतिस्तव**" बनाया और भगवान को पुनः श्रीरङ्ग पहुँच कर पहले के समान आराधित होने के लिये प्रार्थना करते रहे। उन की प्रार्थना को भगवान ने सुना। श्रीगोपराय नामक एक राजा, श्रीरङ्गनाथभगवान को श्रीवेङ्कटाद्रि, से शेञ्जिके पास शिङ्गपुर पहुँचाकर वहां यथाविधि आराधन करते रहे। अनन्तर

श्रीरङ्ग में रहने वाली यवन सेना को श्रीगोपणराय ने हराया और श्रीरङ्गनाथभगवान को श्रीरङ्गनायिक महालक्ष्मी के साथ प्रतिष्ठा कर नित्योत्सवादि कराया। श्रीरङ्गनाथभगवान ने आचार्य को स्वप्न में आज्ञा दी कि आप जल्दी आकर हमारा दर्शन करें। आचार्य ने स्वप्नवृत्तान्त को शिष्यों को सुनाया। अनन्तर यात्री गणों से यह स्थापित किया, आचार्य प्रसन्न हो गये और तुरन्त सत्यमङ्गल के श्रीभगवान से बिदा लेकर कुटुम्ब तथा शिष्यों के साथ श्रीरङ्ग पधारे। श्रीरङ्गनाथभगवान ने आचार्य के सम्मान के लिये परिजन परिच्छद माला शठकोप आदि भेजा। आचार्य ने स्वीकार किया और वे आनन्दवाष्प के साथ मन्दिर में प्रवेश कर श्रीरङ्गनायिक महालक्ष्मी जी क दर्शन कर उन से संतान पाकर श्रीविवाहमण्डपस्तम्भ के पास श्रीभूनीलादेवासमेत श्रीरङ्गनाथ भगवान का दर्शन कर कहने लगे कि आप इतने दिनों के लिये हमसे बिछुड़ गये थे। श्रीरङ्गनाथ भगवान ने कहा कि आगे आपको कोई कमी नहीं होगी। आचार्य ने कहा कि कालतत्त्व तक आप इसी प्रकार दर्शन देते रहें और मङ्गलाशासन भी किया। श्रीरङ्गनाथ भगवान को प्रतिष्ठित करने वाले श्रीगोपणरायजी के विषय में आचार्य ने यह श्लोक कृतज्ञता से कहा–

“आनीयानीलशृङ्गद्यु तिरचितजगद्रञ्जनादञ्जनाद्रेः
शेञ्ज्यामाराध्यकञ्चित्समयमथ निहत्योद्धनुष्कांस्तुरुष्कान्।
लक्ष्मीक्ष्माभ्यासुभाभ्यां सह निजनिलय स्थापयन् रङ्गनाथं
सम्यक्चर्या सपर्यामकृत भुवि यशःप्रापणों गोपणार्यः॥”

भावार्थ – काले शृङ्ग की शोभा से जगत को आनन्द देने

वाले श्रीवेङ्कटाचल से शेञ्जी पधरवा कर, वहाँ कुछ दिन आराधन कर, वीर तुरुष्कों को मार कर, श्रीमहालक्ष्मी तथा भूदेवी के साथ श्रीरङ्गनाथ भगवान को अपने वासस्थान (श्रीरङ्ग) में प्रतिष्ठान कर, भूमि में यश फैलाने वाले श्रीगोपणराय ने अच्छे ढंग से श्रीभगवान का आराधन किया।

अनन्तर अपने शिष्यों को सिद्धान्त का उपदेश देते हुए आचार्य श्रीरङ्ग में निवास कर रहे थे।

उस समय एक श्रीवैष्णवदासी ने एक श्रीवैष्णव के द्वारा आचार्य से कहा कि चिदम्बर (दक्षिण) में शैव लोग आपस में लड़ रहे हैं, यदि इस समय राजा का अबलम्बन हो तो श्रीभगवान की प्रतिष्ठा हो सकती है। आचार्य ने श्रीगोपणराय से कहा। उसने चिदम्बर में श्रीगोविन्दराज भगवान की प्रतिष्ठा की। आचार्य उससे बिदा लेकर श्रीरङ्ग पहुँच गये। उस समय श्रीशैल श्रीनिवासाचार्य, जो कि श्रीकाञ्ची के श्रीकार्यधुरन्धर थे, विशेषशास्त्रों का अध्ययन आचार्य के पास आकर करते रहे।

श्री चिदम्बर में विष्णुप्रतिष्ठा से शैव लोग जल भुन गये। अनन्तर सर्वधारिवर्ष में श्रीरङ्ग में श्रीमदध्ययनोत्सव आने वाला था। शैव लोगों ने मन्दिर के अधिकारी को कुयुक्ति से फुसला कर उस से कहलवाया कि यदि इस समय कोई भी श्रीवैष्णवदिव्य प्रबन्धों तथा श्रीरामानुजसिद्धान्त का प्रामाणिकत्व सिद्ध करें तो श्रीमदध्ययनोत्सव चलाना युक्त है। अन्यथा दिव्यसूरियों को मन्दिर में होने वाला संमान भी रोक दिया जायगा। उस समय मन्दिर के समस्त परिजन तथा बड़े सज्जनों ने आचार्य

से प्रार्थना की कि श्रीभगवद्रामानुजसिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आपके रहते हुए, श्रीमदध्ययनोत्सव बन्द होना ठीक नहीं हैं, अतः आप उन कुमतियों को परास्त करें। आचार्य शीघ्र ही मन्दिर आये। उन्होंने उन कुमतियों शैवों तथा मन्दिर के अधिकारी को मण्डप में बुलाया। वे भी आये। बाद में चलने लगा। उन कुमति विद्वानों ने कुछ क्षुद्रमन्त्र से आचार्य का मुख बंद कर दिया अर्थात् गूंगा बना दिया। आचार्य ने भी समझ लिया। और मन में ही महामन्त्रका स्मरण कर द्वयमन्त्र का अनुसंधान कर यह कहते हुए मुँह खोला कि "**श्रीमते रामानुजाय नमः**"। इसका फल यह हुआ कि प्रतिवादि विद्वान लोग एकदम गूंगे हो गये। उन्होंने बहुत प्रयत्न किया। परन्तु कुछ न हो सका। अनन्तर काकासुर की तरह उन्होंने आचार्य ये प्राणभिक्षा मांगी। क्षमाशील आचार्य ने भी उनका मुँह खोल दिया। और उन को शास्त्रार्थ विचार में हराया और उन को अपने किङ्कर बना लिया। आचार्य न मन्दिर के अधिकारी को आज्ञा दी कि कोई बाद करने आता है तो उसके साथ शास्त्रार्थ का प्रबन्ध करना चाहिये न कि उत्सवों को रोकना चाहिये। ऐसी आज्ञा को उन्होंने शिलालेख में आरूढ कराया। और श्रीमदध्ययनोत्सव चलाया। अनन्तर सकल उपनिषदों के सारभूत वाले मन्त्रत्रय के विवरणस्वरूप "**श्रीमद्रहस्यत्रयसार**" का निर्माण आचार्य ने किया। और उन्होंने "**सारदीप**" "**विरोधपरिहार**" नामक ग्रन्था भी रचे। एक दिन आचार्य प्रबन्धों का अनुसंधान करते रहे। उस समय श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्रस्वामी जी बण्णैक्कूत्तजीयर, जी ने आचार्य

की स्तुति की-

पूर्व तत्परकालनाथयतिराडाचार्यसिद्धान्तितं
श्रीरंगेऽध्ययनोत्सवं प्रतिहतं भूयः प्रतिष्ठापयन्।
वेदान्तद्वय भाष्यमप्यकलुषं भक्तार्यसद्विग्रहां-
आकल्पं निगमान्तदेशिकमणिर्जीयादजय्यात्मधीः॥

पूर्वकाल में परकालसूरि जी, नाथमुनिजी, एवं श्रीरामानुजार्य के द्वारा सिद्धान्तित अध्ययनोत्सवको, जो कि श्रीरङ्ग में रुक गया था। पुनः प्रतिष्ठा करने वाले श्रीभाष्य तथा श्रीभगवद्विषय एवं दिव्यसूरियों के विग्रह को प्रतिष्ठापित करने वाले, श्रेष्ठ आत्सज्ञान युक्त, श्रीवेदान्तदेशिकस्वामी जी कल्प के अन्ततक सर्वोत्कर्ष से रहें।

तब वहाँ के वृद्ध लोगों ने आचार्य से प्रार्थना की कि आप ने श्रीरामानुज सिद्धान्त को वाद तथा ग्रन्थों से स्थापना कर दोषों को निकाल कर, अनन्तर श्रीमदध्ययनोत्सव के प्रतिबन्ध को हटाकर दिव्यप्रबन्धों की प्रामाणिकता, तथा दिव्यसूरियों के माहात्म्य को स्थापित किया, अतः आप का महिमाश्लोक "रामानुजदयापात्रम्" का अनुसंधान दिव्यप्रबन्ध के पाठ के पहले होना चाहिये। श्रीरङ्गनाथ भगवान के सामने आचार्य खड़े हो गयें। श्रीभगवान ने अर्चक के द्वारा कहा कि आप ने हमारे श्रीरामानुज सिद्धान्त को स्थापित किया है, आप का महिमाश्लोक का पीठ दिव्य प्रबन्धों के अनुसंधान करने के पहले होना चाहिये। श्रीजीयरस्वामी ने भी उसी तरह दिव्यप्रबन्धों का अनुसंधान किया। आचार्य ने भी सम्मान पाया और श्रीभगवद्रामानुजाचार्य के द्वारा

प्रचलित "श्रीमन श्रीरङ्ग" के वाक्य को दोवार उच्चारण किया। जिससे श्रीरङ्गभगवान प्रसन्न होगये। आचार्य ने इसको अपने आचार्य श्रीमदात्रेय रामानुजाचार्य की कृपा समझा। अतः आचार्य ने इस श्लोक का अनुसंधान किया–

"नमो रामानुजार्याय वेदान्तार्थप्रदायिने।
आत्रेयपद्मनाभार्यसुताय गुणशालिने॥"

अर्थ – अत्रिकुल के पद्मनाभाचार्य के पुत्र तथा उपनिषदों के अर्थो का प्रदान करने वाले एवं कल्याण गुणों से परिपूर्ण श्रीरामानुजार्य के लिये नमस्कार हो।

वहाँ के लोगों ने अन्त में भी आचार्य के महिमा श्लोक "रामानुजदयापात्रम्" का अनुसंधान किया। इस प्रकार दिव्यप्रबन्धों का अनुसंधान महिम श्लोक के सम्पुट में आगया था। श्रीभगवान तथा आचार्य प्रसन्न हो गये। आचार्य तीर्थ प्रसाद आदि स्वीकार कर श्रीरङ्गनायिक श्रीमहालक्ष्मी जी के मन्दिर पहुँचे। श्रीमहालक्ष्मीजी ने भी आचार्य का सम्मान किया और आज्ञा दी कि आपने श्रीरामानुजस्वामी जी के सिद्धान्त, जो कि हमारे वैभव को प्रकट करने वाला है, की स्थापना कि, आप हमारी सन्निधि में ही अपने शिष्यों को कालक्षेप कराते रहें ऐसा कहकर श्रीमहालक्ष्मी जी ने आचार्य को तीर्थ प्रसादादि को अर्चक के द्वारा दिलाया। आचार्य भी अपने को कृतार्थ समझने लगे और प्रतिदिन श्रीमहालक्ष्मी जी के स्थान पर ही सिद्धान्त का प्रवचन करते थे। श्रीवरदाचार्य ने भी अपने पिता जी की महिमा को अनुभव कर द्राविड़भाषा में **"वाड़ियिरामानुज"**

''**वञ्चपरशमयम्**'' दो गाथाओं को बनाया, श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्रस्वामी जी ने भी ''**नानिलमुं तान बाड़**'' ऐसी एक गाथा सुनायी। वहां स्थित लोगों ने भी एक गाथा के द्वारा आचार्य के चिरजीवन की कामना प्रकट करते हुए, मंगलाशासन किया था। श्रीभगवान की आज्ञा से श्रीलक्ष्मी जी प्रबन्धारंभमे श्रीरामानुजदयापात्रमित्यादि तथा अन्त में ''**सर्वदेशदशाकालेषु**'' इत्यादि तथा ''**बाड़ि**'' आदि गाथायें तथा प्रबन्धानुसंधान के समय प्रत्येक श्रीवैष्णव के गृह तथा मन्दिरों में अनुसंध ान की जाने लगीं।

इन सब अर्थों को श्री द्वितीय ब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्र परकालस्वामी जी ने अपनी ''**गुरुपरम्पराप्रभाव**'' में जो कि 12000 श्लोक के परिमाण से युक्त है, तीन श्लोकों से अच्छी तरह निरूपण किया है।

अनन्तर चित्रकूट अर्थात् चिदम्बर में विष्णुमन्दिर की स्थापना तथा श्रीरङ्ग में आचार्य के द्वारा पुनः श्रीमदध्ययनोत्सव चलाने से क्षुब्ध होकर कुछ कुमति लोगों ने काशी से एक विद्वान को बुलाया, जिस के पास काफी पुस्तकभण्डार था। वह अपने समस्त शिष्यों के साथ श्रीकाञ्ची में आकर श्रीवैष्णवों पर आक्षेप करता था और श्रीविशिष्टाद्वैतसिद्धान्त का खण्डन करता फिरता था। उस समय काञ्ची में घटिकाशतमम्माल तथा किडां बिनयिनार आदि थे। अद्यपि उनका सामान्यशास्त्रों में प्रवेश था, परन्तु भाष्यदि में प्रवेश न होने से कुछ श्रीवैष्णवों के द्वारा श्रीरंगस्थित आचार्य को उस समाचार की सूचना दी। तत्क्षण ही आचार्य ने

श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्रस्वामी जी को शिष्यों के साथ काञ्ची भेजा श्रीशैल श्रीनिवासाचार्य आदि के साथ श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्रस्वामी जी श्रीकाञ्ची पहुँच कर श्रीवरदराजभगवान् तथा महादेवी जी का दर्शन कर उस विद्वान से शास्त्रार्थ करने के लिये मण्डप पर बैठ गये। उत्तर देशीय विद्वान भी आये। एक सप्ताह के शास्त्रार्थ के बाद श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्रस्वामी जी ने उस विद्वान को हरा दिया। विद्वान भग्नगर्व हो गया और कहने लगा कि आप ने श्रीरामानुज स्वामी जी के सिद्धान्त को स्थापन कर अपने नाम सार्थक किया, और श्रीरामानुजसिद्धान्त सकल प्रमाणों का अनुगुण है, परन्तु आप के मत में सन्यासी का शिखा रखना एक ही खटकता है क्यों कि त्रिदंड सन्यासिवेष से रावण ने सीता का हरण किया, अर्जुन ने सुभद्रा का हरण किया। श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्र स्वामी जी ने कहा कि यह वेष प्रपत्ति की तरह सकल फलों का साधक है, यदि यह सकल फलों का साधक न होता तो रावण को क्यों कर अलभ्य सीता और अर्जुन को सुभद्रा मिल जायेगी, इतनी लौकिक बात की भी पता आप को नहीं हैं मुण्ड सन्न्यासता का कोई फल मिलता है, ऐसा कही नहीं लिखा है। वह श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्रचार्य के उत्तर से चुप हो गया और आचार्य के विषय में श्रद्धा के साथ रहने लगा। श्रीकाञ्चीमन्दिर के श्रीकार्यधुरंघर श्रीशैल श्रीनिवासाचार्य ने श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्रस्वामी जी को माला पहनायी थी। उस को पाकर, कृतार्थ समभ्त कर वे आनन्दित हो रहे थे। तब घाटकाशतमम्माल् आदि लोग उनके आश्रित होकर श्री भाष्य आदि ग्रन्थों का कालक्षेप प्रारंभ करने लगे उन्होंने

उन के विषय में तनियन् श्लोक बनाया। वह यह है-

"हस्तीशं लोकविख्यातं कौण्ड़िन्यं विदुषां बरम्।
रामानुजार्यसिद्धान्तस्थापनाचार्यमहं भजे॥"

अर्थ - श्रीभगवद्रामानुजाचार्य स्वामी जी के सिद्धान्त की स्थापना करनेवाले, कौण्ड़िन्यगोत्रोत्पन्न, विद्वद्वर, तथा, सकल लोक प्रसिद्ध श्रीहस्तीशाचार्य को मैं आश्रय लेता हूँ।

अनन्तर श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्रस्वामी जी ने श्रीवरदराजभगवान का दर्शन कर, हिमोपवन दिव्यदेश में श्रीदीपप्रकाशभगवान का दर्शन कर, वहां के आचार्य (श्रीवेदान्तदेशिकचार्य) के घर को प्रणाम कर अपार जनसमूह से बिदा लेकर चित्रकूट में श्रीगोविन्दराजभगवान का दर्शन कर, श्रीरङ्ग पहुँच कर उस काशी विद्वान के साथ आचार्य के दर्शन करने गये। आचार्य भी उन पर प्रसन्न हो गये और शिष्यों के द्वारा श्रीब्रह्मतन्त्रस्वन्त्रस्वामी जी के सामर्थ्य को सुनकर उनका नाम पर्यायभाष्यकार रखकर कहा कि आप युक्ति कल्पना में ब्रह्मसृष्टि की तरह खूब कल्पना करने वाले हो। आचार्य की इस बात को सुन कर घटिकाशतम्माल् ने श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्र जी के विषय में एक दूसरा तनियन् श्लोक बनाला। वह यह है-

"पर्यायभाष्यकाराय प्रणतर्तिं विधून्वते।
ब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्राय द्वितीयब्रह्मणे नमः॥"

अर्थ - आश्रितों के दुःख को हरण करने वाले श्रीभाष्यकारस्वामी जी के अपरावतरारूप दूसरे ब्रह्मरूपी ब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्रस्वामी जी के लिये नमस्कार हो।

आचार्य ने उन को शंख चक्र देकर कहा कि आप इस विद्वान् को पञ्चसंस्कार देकर श्रीवैष्णव बनाकर विशेषार्थों का उपदेश दें। उस विद्वान को पञ्चसंस्कार दिया गया और दास्य नाम "**श्रीवरदराजप्पै**" दिया गया। आचार्य समस्त विशेषार्थों का देते रहे। दिव्यप्रबन्धों में अतिप्रवण श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्रस्वामी जी ने श्रीसंप्रदाव के आद्याचार्य श्रीभगवान से लेकर श्रीदिव्यसूरि, तथा आचार्यो को वर्णन कर, "**दिव्यसूरिस्तोत्र**" बना कर आचार्य को समर्पित किया, जिस से आचार्य प्रसन्न हो गये। आचार्य ने 18 गाथा के "**प्रबन्धसार**" नामक ग्रन्थ बनाकर शिष्यों को उपदेश दिया। शिष्यों ने भी उस ग्रन्थों को गायत्री तथा अष्टाक्षरमन्त्र की तरह अनुसंधान किया। और आचार्य के विषय में बहुत भक्त थे। आचार्य श्रीमद्वेङ्कटनाथवेदान्तदेशिकाचार्य के आश्रित लोगों में से प्रधान, जो कि आचार्य के द्वारा कहे गये थे कि ये सिद्धान्त के प्रचारक होंगे, 12 हैं। वे हैं–

[1] श्रीवरदाचार्य

[7] श्रीशैल श्रीनिवासाचार्य

[2] श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्र स्वामीजी

[8] श्रीशैलदासाचार्य

[3] वण्णैक्कूत्त जीयर

[9] श्रीतीर्थकुमार जी

[4] प्राभाकर जीयर

[10] किडांबिकुमार जी

[5] कुञ्जप्पूर रामानुजाचार्य [11] कोमाण्डूग्कुमार जी

[6]कन्दाडैयेम्बार [12]तूप्पुलप्पै

इस प्रकार आचार्य शिष्यों के साथ उभय वेदान्तों का प्रचार करते हुए नित्यनैमित्तिक कर्म करते हुए अनुज्ञाकैङ्कर्यों को भी करते हुए समस्त दिव्यदेशों की अभिवृद्धि के लिये तत्तद्देशस्थ भगवानों को मङ्गलाशासन करते थे। आचार्य कहते थे कि श्रीहयग्रीवभगवान की श्रीदिव्यसूक्तिरूप श्रीसंप्रदाय के वचन के अनुसार जो चलेगा, वही संसार से छूटेगा, अन्यथा नहीं। इस प्रकार आचार्य अपने शिष्य तथा ग्रन्थों से श्रीभगवद्रामानुज सिद्धान्त की अभिवृद्धि करते हुए समस्त दिव्यदेशों के भगवान आचार्यों तथा दिव्यसूरियों के कृपापात्र बने हुए थे।

उस समय आचार्य वृद्ध हो चले। एक अद्वैती महाशिल्पी, जो कि अपनी विद्या से आचार्य को जीतकर अपने संप्रदाय की महत्ता दिखाना चाहता था, आचार्य से कहने लगा कि यदि आप शिल्पशास्त्र जानते हो तो एक सुन्दर मूर्ति बनाइये। आचार्य ने कहा कि यह तो एक बहुत सुलभ काम है। उस ने कहा कि फिर भी आप अपनी मूर्ति बनाइये। आचार्य रात को सोये हुए थे। श्रीरङ्गनाथभगवान ने स्वप्न में आज्ञा दी कि एक हस्त में ज्ञानमुद्रा तथा दूसरे हस्त में पुस्तक ली हुई अपनी मूर्ति बनाइये। सबेरे शिल्पी को वह स्वप्न कह कर आचार्य ने उसके सामने मोम से विग्रह बनाया और लोहे को गला दिया। अब विग्रह तैयार हो गया। उस सुन्दर तथा लक्षणयुक्त विग्रह को देख कर वह शिल्पी हक्का बक्का रह गया। आचार्य ने उस को आज्ञा दी कि तुम पीठ बना कर विग्रह को लगाओ। उस ने भी पीठ बनाया और विग्रह

को लगाने लगा। परन्तु विग्रह में अतिसौन्दर्य से उस को त्रुटि दिखने लगी कि कपोल भाग कुछ अधिक हो गया है। अतः उस ने अपने औजार का प्रयोग किया जिस से आचार्य के कपोल से रक्त की धारा बहने लगी। उस से वह शिल्पी भयभीत हो गया और आचार्य के चरणों पर गिर कर कहने लगा कि मुझे शिल्पशास्त्र का ज्ञान गंभीर न होने के कारण मैं ने यह अपराध कर दिया है, आप इस विग्रह को पूर्ववत् सुन्दर बना दीजिये। आचार्य ने प्रसन्न हो कर उस को पञ्चसंस्कार दिया और उस मूर्ति को पूर्ववत् अति सुन्दर होने के कारण छिपाकर रखा। और एक "शिल्पार्थसार" नामक ग्रन्थ भी बना दिया। आचार्य श्रीरङ्गमन्दिर जाकर श्री भगवान का दर्शन कर तीर्थ आदि सम्मान पा कर घर लौट गये।

इस प्रकार आचार्य शतायु तक पहुँच गये। अनन्तर सौ वर्षों के बाद सौयवर्ष के कार्तिक मास में पूर्णिमा में आचार्य श्रीरङ्ग मन्दिर गये हुए थे। श्रीभगवान ने आचार्य को आज्ञा दी कि आपने श्रीरामानुज सिद्धान्त का पोषण किया और समस्तगुणों से पूर्ण आप शीघ्र ही श्रीवैकुण्ठ पधारें। आचार्य ने भी श्रीभगवान का आज्ञा को शिरोधार्य बनाया। श्रीभगवान के द्वारा प्रदत्त माला आदि संमान को पाकर आचार्य अपनी शिष्यमण्डली के साथ मन्दिर की प्रदक्षिणा करते हुए दिव्यसूरि, आचार्य का दर्शन करते हुए जा रहे थे। तब श्रीवरदाचार्य श्रीमद्रामानुजस्वामी जी का दर्शन करने गये थे। उन्होंने अर्चक के द्वारा श्रीवरदाचार्य को आज्ञा दी कि आप को हमारे सिद्धान्त के प्रवर्तक के रूप में पहले

ही हमने कहा था, अब हम विशेष रूप से आज्ञा देते हैं। ऐसा कह कर माला प्रसाद आदि उन्हों ने दिलवाया। इस सम्मान को पा कर श्रीवरदाचार्य आचार्य के पास आये। आचार्य ने भी उन पर कृपादृष्टि रखी। आचार्य अपने शिष्यों के साथ श्रीरङ्गनायिक श्रीमहालक्ष्मी जी का दर्शन कर रहे थे। उस समय शिष्यमण्डली चिन्तित थी कि आचार्य के वैकुण्ठवास के बाद क्या होगा। श्रीमहालक्ष्मी जी ने आदेश दिया कि श्रीभगवद्रामानुजाचार्य के समान हम दिव्यदम्पत्ति तो के प्रभाव को प्रचार करने वाले सर्वतन्त्रस्वतन्त्र आचार्य श्रीवेङ्कटनाथ जी के वैकुण्ठवास होने के बाद आचार्य की एक मूर्ति का जिस में एक हाथ में श्रीकोश, तथा दूसरे हाथ में ज्ञानमुद्रा रहे, निर्माण कर हमारी सन्निधि में स्थापित कर आराधन करें। ऐसी आज्ञा देकर श्रीमहालक्ष्मी जी ने आचार्य को माला आदि प्रदान किया। अनन्तर आचार्य अपने घर पहुंच कर रोगग्रस्त हो गये। श्रीयामुनाचार्य तथा श्रीरामानुजाचार्य जी के वैकुण्ठवास के समय उन से प्राप्त आज्ञाओं को स्मरण करने से श्रीवरदाचार्य आदि शिष्यों को आश्वासन मिलता था, परन्तु आकृति संबन्ध के जोर से उन की आंखे सजल हो गई। आचार्य ने शिष्यमण्डली को आज्ञा दी कि श्रीवरदाचार्य के रहते आप लोगों को क्यों चिन्ता हो रही है, श्रीवरदाचार्य को आज्ञा दी कि श्रीदिव्यदंपति तथा उन के प्रापक श्रीरामानुजाचार्य जी के रहते आप को क्यों चिन्ता हो रही है? आप शेष जीवन में यह काम करें, ऐसा कह कर एक श्लोक से आज्ञा दी। वह श्लोक यह है

''आकुरुदेशं प्रचरेर्मा कुरु परवादिधूनने शङ्काम्।
स्वीकुरु मन्मतमेक व्याकुरु सर्वांश्च मद्ग्रन्थान्॥''

अर्थ – उत्तर कुरु देश तक जाकर दिग्विजय करो। परवादियों को परास्त करने मे मत हिचको। मेरे मत एक को स्वीकार करो। मेरे सब ग्रन्थों की व्याख्या करो। श्रीवरदाचार्य भी आचार्य की आज्ञा से आश्वस्त हुए और शिष्यमण्डली को आश्वस्त करने लगे।

आचार्य ने श्रीदशावतार भगवान तथा श्रीपरकालसूरि जी को साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। श्रीपरकालसूरि जी ने आज्ञा दी कि आप ने हमारी गाथाओं के मुख्यतात्पर्यविषय शरणागति को अच्छी तरह वर्णित किया है। श्रीदशावतार भगवान ने कहा कि हमारे अवतार से भी आप का अवतार बहुत लाभदायक हुआ। ऐसा कह कर उन्हों ने आचार्य को माला आदि प्रदान कर संमानित किया। आचार्य भी अपने को धन्य समझ कर घर लौट गये। उस दिन स्वाराध्य श्रीवरदराजभगवान तथा श्रीहयग्रीव भगवान को कार्तिकपौर्णमासी में विशेषाराधन करा कर श्रीमद्रामानुजाचार्य श्रीमदात्रेयरामानुजाचार्य के श्रीपादतीर्थ स्वीकार कर आचार्य ने अपने शिष्यों को श्रीपादतीर्थ दिया। शिष्यमण्डली ने प्रार्थना की कि अपने चरण चिन्ह तथा श्रीपादतीर्थ आप दें। आचार्य ने भी अपने श्रीपादतीर्थ शिष्यों को देकर अपने चरणचिन्ह भी दिया। उन्हों ने भगवत्प्रसादादि स्वीकार किया मानो कि कोई विवाह होने वाला हो। आचार्य बहुत प्रसन्न थे। श्रीवरदाचार्य आदि शिष्यों ने आचार्य को षाष्टाङ्गप्रणिपात किया जिससे कर आचार्य प्रसन्न

थे। आचार्य को स्वाराध्य श्रीवरदराजभगवान तथा श्रीमदात्रेयरामानुजाचार्य के द्वारा प्रदत्त शंखचक्र को श्रीवरदाचार्य को सौप दिया और श्रीलक्ष्मीहयग्रीवभगवान तथा शंखचक्रों को श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्रकालस्वामी जी को दे दिया और श्रीशैल श्रीनिवासाचार्य को आदेश दिया कि प्रपत्ति ही मोक्षोपाय है और श्रीकाञ्चीवरदराज भगवान के श्रीकार्यधुर घर बनकर आप श्रीभगवान का कैङ्कर्य करते रहें। आचार्य ने शिष्यों को विशेषार्थों का उपदेश देकर श्रीमदात्रेयरामानुजाचार्य जी का चरणयुगल को ध्यानकर शिष्यों को आदेश दिया कि उपनिषद् तथा दिव्यप्रबन्धों का अनुसंधान हो। शिष्य भी उपनिषद् आदि का अनुसंधान कर रहे थे। तब श्रीकवितार्किकसिंह सर्वतन्त्रस्वतन्त्र श्रीमद्वेदान्तदेशिक आचार्य श्रीमद्वेङ्कटनाथ जी श्रीरङ्गनायिक जी के मन्दिर के उत्तर वीथी स्थित अपने स्थान में दक्षिणदिशा में अपने शिर को श्रीवरदाचार्य के गोद में तथा अपने श्रीपादों को श्रीब्रह्मतन्त्रस्वतन्त्रस्वामी जी के गोद में रखकर श्रीमदात्रेयरामानुजाचार्य के श्रीपादोंको ध्यान करते हुए श्रीवैकुण्ठ पधारे। उनका चरम श्लोक यह है–

शब्दे सौम्ये च वारे गतवति तरणौ वृश्चिकं कृतिकर्क्षे
राकायां वेंकेटेशो यतिनृपतिमतं सर्वतः स्थापयित्वा।
वेदान्ताचार्यवर्यो विरचितविविधानेकदिव्यप्रबन्धो
श्रीशैलाघाशघण्टाकृतिवपुरभवदे शिकेन्द्रो दयालुः॥

अर्थः– अनेक ग्रन्थों के रचयिता दयालु देशिकेन्द्र वेदान्ताचार्य वेंकटनाथ जी ने चारों ओर श्री भाष्यकारस्वामी जी के मत की

स्थापना कर सौम्यवर्ष के वृश्चिकमास में कृत्तिनक्षत्र में पौर्णिमा में सोमवार में श्रीवेंकटशैल के श्री भगवान की घण्टा का स्वरूप ले लिया।

इसी प्रकार चराचर विश्व में भारतभूमि को ही कर्मभूमि कहते है। इसीलिए यहाँ भगवान अवतार लिया करते हैं लेकिन भगवान अवतार तब लेते है जब अधर्म चरम पर होता है। यदि अधर्म चरम पर न हो तो वह जगत नियंता अपने पाषर्दों को समाज सुधार के लिए भेजते हैं। और वे समाज सुधार कर अपने नित्य सखा (स्वामी) के पास पहुँच जाते हैं। इसी क्रम में मायावाद का खंडन तथा प्राणीमात्र के उत्कर्ष हेतु कलिकाल में वेदान्तदेशिक का प्राकट्य हुआ जो श्रीमन्ननारायण के नित्यपार्षद घण्टा अवतार थे। जब तक श्री आचार्यवर इस धरातल पर रहे निरन्तर समाज के उत्कर्ष हेतु कार्य करते रहे तथा प्राणीमात्र को श्रीमन्ननारायण के पाद पद्मों में लगाने का प्रयास करते रहे हैं। ऐसा नहीं है कि इस श्री स्वामी हमारे मध्य नहीं है जिस प्रकार एक पुत्र अपने पिता की ही प्रतिमूर्ति होता है या यह भी कह सकते है कि एक पिता का फल स्वरूप उसका पुत्र होता है ठीक वैसे एक गुरु का ज्ञान शिष्य परशिष्य की परम्परा से हमेशा जीवित रहता है। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि आज भी आचार्यवर हमारे मध्य विराजमान हैं। श्रीआचार्य वर जी की हमेशा यह इच्छा थी कि श्रीधाम वृन्दावन में भी एक ऐसा स्थान हो जहाँ पर अष्टम्याम् भगवद् सेवा के साथ ही वैष्णव सेवा भी हो। अतः अपनी इस इच्छा को उन्होंने आगे बढ़ाने का माध्यम

हमारे प्रातः स्मरणीय वैंकुण्ठवासी श्रीदादा गुरु को बनाया। वे पहले फक्कड़ वृत्ति (परमहंस) के रूप में घूमा करते थे। एक श्री आचार्यवर ने दादागुरु को स्वप्न में अपनी इच्छा प्रकट की। तब मेरे (देवनायकाचार्य) दादा गुरु ने प्रत्युत्तर में अपने शरीर और भगवद्कृपा के अलावा कोई साधन न होने की बात कही। तब श्री आचार्य चरण ने कहा है कि इस जगत में सब कुछ भगवद्आधीन है। तुम तो सिर्फ निमित्त कारण हो। अतः आचार्य श्री कि इस आज्ञा को शिरोधार्य करके श्री केशीघाट पर श्री यमुना महारानी को निहारते हुये विचार कर रहे थे इस कार्य को कैसे सम्पन्न किया जाय कि सहसा उन्हें किसी ने पीछे से आवाज दी कि हे महाराजजी! यह मेरी डिबिया किसी की धरोहर है इसे सम्हालिये मैं स्नान करके आती हूँ और वह अन्तर्धान हो गयी। जब दादा गुरु ने डिबिया देखी तो उसमें बहुत सारे कीमती रत्न से परिपूर्ण थी श्री दादा गुरु को समझने में देर न लगी कि यह तो साक्षात श्री जी कृपा एवं श्री आचार्यवर की अनुग्रह एवं कृपा के फलस्वरूप देखते ही देखते एक विशाल आश्रम बनकर खड़ा हो गया। जिसको हम सभी देशिक आश्रम(वेदान्तदेशिक आश्रम) श्रीजानकी वल्लभ आश्रम के नाम से जानते हैं। आज भी यहाँ श्री जानकी वल्लभ की अष्टम्याम् सेवा होती है। तथा आचार्यवर की परम्परागत नित्य अराधना सेवा तथा वैष्णव सेवा होती है। अतः श्रीआचार्यवर आज भी सभी वैष्णव भक्तों को अन्तःकरण (अन्तर्यामी) रूप से प्रेरित करते रहते हैं।

श्री-महावीरवैभवम् -15

श्रीमते निगमान्तमहादेशिकाय नमः

श्रीमान् वैङ्कटनाथार्यः कवितार्किककेसरी।
वेदान्ताचार्यवर्यों में संनिधत्तां सदा हृदि॥

जयत्याश्रितसंत्रासध्वान्तविध्वंसनोदयः।
प्रभावान् सीतया देव्या परमव्योमभास्करः॥

जिनका जन्म अपने प्रभाव से आश्रित भक्तों को त्रिविधताप रूपी अंधकार को ध्वंस करता है जनकनन्दनी श्री सीता जी के साथ परम आकाश में प्रकाश करने वाला सूर्य के समान हैं। ऐसे श्री रघुवीर भगवान श्रीराम की विजय हो।

1 जय जय महावीर!

अर्थ :- आप महावीर हैं।

2 महाधीर धौरेय!

अर्थ :- महान धीरों में अग्र गण्य हैं।

3 देवासुर समर समय समुदित निखिल निर्जर निर्धारित निरवधिक माहात्म्य!

अर्थ :- देवों और असुरों के परस्पर युद्ध के समय एकत्र हुये सभी सुरासुर से आपका महात्म्य अवधी रहित निश्चित किया गया है।

4 दशवदन दमित दैवत परिषदभ्यर्थित दाशरथि भाव!

अर्थ :- रावण के द्वारा दमन किये हुये देवों की सभा की प्रार्थना से आपने श्री दशरथ महाराज का पुत्र भाव स्वीकार किया है।

5 दिनकर कुल कमल दिवाकर!

अर्थ :- आप सूर्यवंश कुल रूपी कमल के लिए सूर्य हैं।

6 दिविषदधिपति रण सहचरण चतुर दशरथ चरमऋण विमोचन!

अर्थ :- देवताओं के अधिपति राजा (इंद्र) के युद्ध में सहायता करने में कुशल प्रवीण महाराज दशरथ के अंतिम पुत्र भाव पितृऋण से मुक्त करने वाले कल्याण करने वाले आप हैं। ऐसे आप हे रामभद्र ! आपको बारम्बार नमस्कार है।

7 कोसल सुता कुमार भाव कञ्चुकित कारणाकार!

अर्थ:- सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उपादान और निमित्त कारणों से आपका स्वरूप है। वह भी कौशल्या माता के कुमार भाव (पुत्र भाव) में अंतर्हित हो गया है।

8 कौमार केलि गोपायित कौशिकाध्वर!

अर्थ:- आपने बाल क्रीड़ा से विश्वामित्र मुनि के यज्ञ की रक्षा की है।

9 रणाध्वर धुर्य भव्य दिव्यास्त्र बृन्द वन्दित!

अर्थ:- आप उनकी (विश्वामित्र) तपस्या से प्राप्त दिव्यास्त्र के समूह गण से बंदित हैं।

10 प्रणत जन विमत विमथन दुर्ललित दोर्ललित!

अर्थ:- आपके सुन्दर बाहू प्रपन्न भक्त जनों के विरोधियों को मंथन (नाश)करने में कठोर हैं।

11 तनुतर विशिख विताडन विघटित विशरारु शरारु

ताटका ताटकेय!

अर्थः- आपके अत्यंत लघु बाण के प्रभाव से राक्षसी ताड़का और उसके भाई ताड़केय सुबाहु विनष्ट हो गये हैं। ऐसे हेराम भद्र! आपको बारम्बार प्रणाम है।

12 जडकिरण शकलधर जटिल नटपति मकुट तट नटनपटु विबुधसरि-दतिबहुल मघुगलन ललितपद नलिनरज उपमृदित निजवृजिन जहदुपल तनुरुचिर परम मुनिवर युक्ति नुत ! - युवति

अर्थः- शुक्ल पक्ष द्वितीय के चंद्रमा के खण्ड को धारण करने में अग्रगण्य जटा से विभूषित नटराज (शंकर जी) के मुकुट के शिखर पर नृत्य करने में चतुर और गंगा के अतिशेय प्रभाव के स्पर्श से आपके चरणारविन्द अतिशोभायमान हो रहे हैं। आपके चरणारविन्द की धूलि से अपने पापों को मर्दित कर पत्थर के शरीर को त्याग कर कमल के समान कोमल युवती होकर मुनियों में श्रेष्ठ गौतम की पत्नि अहिल्या से आपका चरणारविन्द बंदित है।

13 कुशिक सुत कथित विदित नव विविध कथ !

अर्थः- विश्वामित्र के द्वारा कही गई बातों को जान लिये हैं। नये नये विधि कथाओं को आपने समझ लिए हैं।

14 मैथिल नगर सुलोचना लोचन चकोर चन्द्र !

अर्थः- मिथिला की सुन्दर आँखें वाली नारियाँ एवं महारानी सुनैना के चकोर के समान आँखों के चन्द्रमा

आप हैं।

15 खण्डपरशु कोदण्ड प्रकाण्ड खण्डन शौण्ड भुजदण्ड !

अर्थः- आपके भुजा रूपी दण्ड शंकर जी के प्रबल धनुष को खंडन करने में निपुण हैं।

16 चण्डकर किरण मण्डल बोधित पुण्डरीक वन रुचि लुण्टाक लोचन !

अर्थः- हे रामभद! आपके लोचन सूर्य किरणों से विकसित कमल झुण्डों की शोभा को लुटने वाले हैं।

17 मोचित जनक हृदय शङ्कातङ्क !

अर्थः- आपने राजा जनक के हृदय की शंका रूपी आतंक (भय) मुक्त करने वाले हैं।

18 परिहृत निखिल नरपति वरण जनक दुहितृ कुचतट विहरण समुचित करलत!

अर्थः- आपने सीता जी के द्वारा समस्त राजाओं के समस्त बाणों को अपहरण किया है। आपके करतल (हथेली) श्रीजनक नन्दनी श्री जानकी के वक्षस्थल पर बिहार करने योग्य हैं।

19 शतकोटि शतगुण कठिन परशुधर मुनिवर करधृत दुरवनमतम निज धनुराकर्षण प्रकाशित पारमेष्ठ्य!

अर्थः- इन्द्र के वज्र से भी सैंकड़ों गुना कठोर परशु (फर्सा) धारण करने वाले मुनियों में श्रेष्ठ श्री परशुराम जी के हाथों में लिये हुये एवं नहीं मुड़ने वाले धनुष को

खींचकर(चढ़ाकर)आपने पारमेष्ठय सार्वभौम को प्रकाशित किया है।

20 क्रतुहर शिखरि कन्तुक विहृत्युन्मुख जगदरुन्तुद जितहरि दन्ति दन्ति दन्तुर दशवदन दमन कुशल दशशतभुज मुख नृपतिकुल रुधिर झर भरित पृथुतर तटाक तर्पित पितृक भृगुपति सुगति विहतिकर नत परुडिषु परिघ!

अर्थः- श्रीशंकर जी के प्रवृत्त (हिमालय) पर कंदुक क्रीड़ा करने वाले जगत को पीड़ित करने वाले जीती हुई सभी दिशाओं में व्याप्त कथा वाले रावण को दमन करने में कुशल आप हैं। सहस्त्र भुजा वाले राजा सहर्स्त्राजुन तथा नृपों के कुलों रक्तधार से भरे हुये विशाल तालाब से पितरों का तर्पण करने वाले भृगुपति परशुराम की सुगति को विनष्ट करने वाले आप हैं। उनके बाणों को कुण्ठित करने वाले आपके अस्त्र हैं।

21 अनृत भय मुषित हृदय पितृ वचन पालन प्रतिज्ञावज्ञात यौवराज्य!

अर्थ :- आपने महारानी कैकयी के प्रति वरदान के वचन को असत्य होने के भय से वंचित हुये हृदय से पीड़ित पिता(महाराजा दशरथ) के वचन के पालन की प्रतिज्ञा से युवराज पद को ठुकरा दिया है।

22 निषाद राज सौहृद सूचित सौशील्य सागर!

अर्थः- निषादराज के साथ मित्रता से आपने अपार सौशिल्यता प्रकट की है।

23 भरद्वाज शासन परिगृहीत विचित्र चित्रकूट गिरि कटक तट रम्यावसथ!

अर्थः- भारद्वाज मुनि की आज्ञा से सुन्दर चित्रकूट पर्वत के समीप रमणीय आश्रम को स्वीकार किया है।

24 अनन्यशासनीय! प्रणत भरत मकुटतट सुघटित पादुकाग्र्याभिषेक निर्वर्तित सर्व लोक योग क्षेम।

अर्थः- आपने अनन्य शासन में रहने वाले श्री भरत लाल के मुकुट तट के साथ विराजमान अपने चरणपादुका को राज्यअभिषिक्त कर समस्त जनों का कल्याण किया है।

25 पिशित रुचि विहित दुरित वलमथन तनय बलिभुगनुगति सरभस शयन तृण शकल परिपतन भय चकित सकल सुर मुनिवर बहुमत महास्त्र सामर्थ्य!

अर्थ :- राक्षसों से किये गये दुराचारों से सहमत इन्द्र के पुत्र काकरूपधारी जयंत का बड़ी शीघ्रता से पीछा करने वाले सस्यतृण के प्रहार के डर से चकित होकर सभी देव और मुनियों ने उन महान् अस्त्र सामर्थ्य का बहुमान किया है।

26 द्रुहिण हर वलमथन दुरारक्षशरलक्ष्य!

अर्थ :- आप ब्रह्मा इन्द्र और शंकर की अपेक्षा अति कठिनाई से प्राप्य हैं एवं लक्ष्य हैं।

28 दण्डका तपोवन जङ्गम पारिजात!

अर्थ :- आपने दण्डकावन तपोवन को बाणों का लक्ष्य बनाया है। आप जंगलों में पारिजात (कल्पवृक्ष) हैं।

29 विराध हरिण शार्दूल!

अर्थ :- आप चतुश्पाद पशुरूपी मृग में शार्दुल हैं।

30 विलुलित बहुफल मख कलम रजनिचर मृग मृगयारम्भ संभृत चीरभृदनुरोध!

अर्थ :- अनेक यज्ञों में विध्वंस करने वाले निशाचर रूपी मृगों का शिकार करने से आपके यज्ञ चिरकाल बढ़े हैं।

31 त्रिशिरः शिरस्त्रितय तिमिर निरास वासरकर!

अर्थ :- त्रिशिर नामक राक्षस के तीनों सिर रूपी त्रिविध अंधकारों को विनाश करने में आप सूर्य के समान समर्थवान् है।

32 दूषण जलनिधि शोषण तोषित ऋृषिगण घोषित विजय घोषणा!

अर्थ :- दूषण नामक राक्षस एवं अनेकों दोषों के सागर को शोषण करने के कारण प्रसन्न ऋषिगण घोषणा की है। (जयकार की है।)

33 खरतर खर तरु खण्डन चण्ड पवन!

अर्थ :- खरनामक राक्षस एवं कर्कस पक्षियों से युक्त वृक्षों को उखाड़ने में प्रचण्डवेगमान पवन आप हैं।

34 द्विसप्त रक्षःसहस्त्र नलवन विलोलन महाकलभ!

अर्थ :- चौदह हजार राक्षसों को कमलवन के समान नष्ट

करने में एक गज के समान हैं।

35 असहाय शूर! अनपाय साहस!

अर्थ :- दूसरों की सहायता स्वीकार नहीं करने वाले एवं अटूट सहास (धैर्य) वाले आप हैं।

37 महित महामृर्थ दर्शन मुदित मैथिली दृढतर परिम्भण विभव विरोपित विकट वीरव्रण!

अर्थ :- जगत प्रसिद्ध धनुष महायज्ञ के अवसर पर आप के दर्शन मात्र से प्रसन्न हुई मैथिली के साथ आपके दाम्पत्य संबंध के वैभव से विकट वीरों का छिद्रान्वेषन विलुप्त हो गया है।

38 मारीच माया मृग चर्म परिकर्मित निर्भर दर्भास्तरण!

अर्थ :- मृग रूप धारी मायावी मारीच के चरण से आपके कुशासन का निर्माण निश्चित था।

39 विक्रम यशो लाभ विक्रीत जीवित गृध्रराज देह दिधक्षा लक्षित भक्तजन दाक्षिण्य!

अर्थ :- आपने अपने पराक्रम से यश प्राप्त किये एवं सीता जी की रक्षा के लिए जीवन को बलिदान देने वाले गिद्धराज (जटायु) का देह संस्कार कर अपने आप ने भक्त जनों पर अनुपम दाक्षिण्ये प्रगट किया है।

40 कल्पित विबुधभाव कबन्धाभिनन्दित!

अर्थ :- गंधर्व रूप धारण करने वाला राक्षस कंबंध के द्वारा वंदित है।

41 अवन्ध्य महिमा मुनिजन भजन मुषित हृदय कलुष

शबरी मोक्ष साक्षिभूत!

अर्थ :- आपकी महिमा सफल है। आपके भजन यश गान ने मुनिजनों के हृदय का पाप चुरा लिया है इसमें आप शबरी के मोक्ष के साक्षी हैं।

42 प्रभञ्जन तनय भावुक भाषित रञ्जित हृदय!

अर्थ :- पवन पुत्र हनुमान जी के भक्ति भाव एवं नाम संकीर्तन से आपका हृदय प्रेमार्द्र हो गया है।

43 तरणिसुत शरणागति परतन्त्रीकृत स्वातन्त्र्य!

अर्थ :- सुग्रीव को दी गई शरणागति ने आपकी स्वतंत्रता को परतंत्र कर दिया।

44 दृढ़घटित कैलास कोटि विकट दुन्दुभि कङ्काल कूट दूर विक्षेप दक्ष दक्षिणेतर पादानुष्ठ दरचलन विश्वस्त सुहृदाशय!

अर्थ :- कैलाश पर्वत के शिखर के समान दृढ़ गात्र वाले धुंधुवी दैत्य के अस्थि पंजर को आपने बायें चरण के अंगुष्ठे रंच मात्र चलाकर 10 योजन तक फेंक दिया जिससे आपके मित्र सुग्रीव को आपके पराक्रम पर विश्वास हो गया।

45 अतिपृथुल बहु विटपि गिरि धरणि विवर युगपदुदय विवृत चित्रपुङ्ख वैचित्र्य!

अर्थ :- आप में अति विशाल एवं असंख्य वृक्षों परिपूर्ण पर्वतों और पृथ्वी की गुफाओं को एक बार में व्याप्त करने वाले बाणों की विविधता है।

46 विपुल भुज शैलमूल निबिड निपीडित्त रावणरणरणक जनक चतुरुदधि विहरण चतुर कपिकुलपति हृदय विशाल शिलातल दारण दारुण शिलीमुख!

अर्थ : अपने बराबर योद्धा न मिलने के कारण रावण अपने पर्वत के समान कठोर एवं अधिक भुजाओं से अत्यंत प्रेरित हो रहा था। उसने अपने रण क्रीड़ा देकर विश्राम दिया।

47 अपार पारावार परिखा परिवृत परपुर परिसृत दव दहन जवन पवनभव,कपिवर परिष्वङ्ग भावित सर्वस्व दान!

अर्थ :- पार पाना कठिन है। ऐसे सागर रूपी परिधि से घिरे हुये शत्रु (रावण की पूरी लंका में फैली हुई अग्नि की ज्वाला का बेग बढ़ाने वाले पवन पुत्र हनुमान जी से मिलाप करते हुये आपने सर्वस्व दान का वचन दे दिया था।

48 अहित सहोदर रक्षः परिग्रह विसंवादि विविध सचिव विश्रम्भण समय सम्रम्भ समुज्जृम्भित सर्वेश्वर भाव!

अर्थ :- विमत रावण के छोटे भाई विभिषण ने उन राक्षसों की सभा में विविध संवाद करने वाले मंत्रियों ने मतभेद उत्पन्न होने पर निर्भयता के आपके सर्वेश्र्वत्व का भाव

घोषित किया था।

49 सकृत् प्रपन्न जन संरक्षण दीक्षित! वीर! सत्यव्रत!

अर्थ :- आपने एक बार भी प्रपत्ति शरणागति स्वीकार करने वाले भक्त जनों की रक्षा की दीक्षा ली है। (सकृत एव प्रपन्नाय तवासमीति याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददां एतद् व्रतं मम ॥) यह प्रतिज्ञा इसीलिए आप वीर है। और सत्यव्रत है। ऐसे हे राम भद्र! आपको बारम्बार प्रणाम है।

52 प्रतिशयन भूमिका भूषित पयोधि पुलिन!

अर्थ :- समुद्र से मार्ग की याचना करते हुये पृथ्वी रूपी आपके आसन से सागर की बालुकाएँ बहुत ही विभुषित हो रही थी।

53 प्रलय शिखि परुष विशिख शिखा शोषिताकुपार वारिपूर!

अर्थ :- आपके प्रलय प्रलयकालिन अग्नि के सदृश्य कठोर बाणों की शिखाएँ सागर (समुद्र) को सुष्क कर दिये।

54 प्रबल रिपु कलह कुतुक चटुल कपिकुल करतल तूलित
हृत गिरि निकर साधित, सेतुपथ सीमा सीमन्तित समुद्र!

अर्थ :- मेघ के शत्रु मेघनाद के साथ युद्ध क्रीड़ा आपकी हुई है। आपने चंचल कपियों के यूथों से करतल में तौल

कर आहरण किये हुये चट्टानों के द्वारा बनाये हुये सेतु सीमा से समुद्र के सर पर मार्ग बना लिया है।

55 द्रुतगति तरुमृग वरूथिनी निरूद्ध लङ्कावरोध वेपथु लास्य लीलोपदेश देशिक, धनुर्ज्याघोष !

अर्थ :- शीघ्रगामी सिंह के समान सेनाओं से घिरे हुये लंका के अंत:पुर में भय कंपित लोगों की नृत्य लीला का उपदेश से कपने वाला आचार्य आपके धनुष का टंकार है।

56 गगन चर कनक गिरि गरिम धर निगममय निज गरुड गरुदलित लव गलित, विष वदन शर कदन !

अर्थ :- आकाश को स्पर्श करने वाला कनक गिरि सुमेरू पर्वत के समान गौरव को धारण करने वाले आप हैं। आपके वेद स्वरूप गरुड़ रथ के पंखों के बेग ने शत्रु के सर्प रूपी बाणों को ध्वंस कर दिया।

57 अकृतचर वनचर रणकरण वैलक्ष्य शौणिताक्ष बहुविध रक्षो बलाध्यक्ष, वक्षः कवाट पाटन पटिम साटोप कोपावलेप !

अर्थ :- राक्षसों के वक्षस्थल को फाड़ने में निपुण आटोप सहित कोप के गर्भ से कठोर टंकार करने वाला आपका धनुष है।

58 कटुरटद् अटनि टङ्कृति चटुल कठोर कार्मुक विनिर्गत

विशङ्कट विशिख विताडन विघटित मकुट विह्वल
विश्रवस्तनय विश्रम समय विश्राणन विख्यात विक्रम!

अर्थ :- आपके संकट उत्पन्न करने वाले बाण के प्रहार से फेंके हुये मुकुट के कारण विह्वल हुये विश्रवा के पुत्र रावण के विश्राम के समय को आतंकित करने वाला आपका पराक्रम प्रसिद्ध है। अर्थात् रावण के विश्राम के समय आपने अपने बाण से उसके बाण फेंक दिये थे।

59 कुम्भकर्ण कुलगिरि विदलन दम्भोलि भूत निःशङ्क कङ्कपत्र!

अर्थ :- कुलाचल पर्वत के समान विशालकाय कुम्भकरण की विखंडित वज्र आप हैं। राक्षसों को चीरने वाला वज्र आप हैं।

60 अभिचरण हुतवह परिचरण विघटन सरभस परिपतद्!
अपरिमित कपिबल जलधि लहरि कलकलरव
कुपित मघवजि दभिहननकृदनुज साक्षिक राक्षस द्वन्द्वयुद्ध!

अर्थ :- मेघनाद के द्वारा किये हुये अविचार यज्ञ की अग्नि लपट को विघटन करने के लिए अत्यंत वेग से आक्रमण करने वाला कपियों के सैन्य समुद्र की लहरों के कलरव से कुपित हुये मेघनाद का हनन करने वाले आपके अनुज लक्ष्मण जी हैं। आप राक्षसों

(विभीषण और रावण) के द्वन्द्व युद्ध के साक्षी हैं।

61 **अप्रतिद्वन्द्व पौरुष!**

अर्थ :- आपके पौरूष पराक्रम का प्रतिद्वन्द्व करने वाला कोई नहीं है।

62 **त्र्यम्बक समधिक घोरास्त्राडम्बर!**

अर्थ :- शंकर जी से भी अधिक आपके घोर अस्त्रों का आडंबर विस्तार है।

63 सारथि हृत रथ सत्रप शात्रव सत्यापित प्रताप! शित शर कृत लवन दशमुख मुख दशक निपतन पुनरुदय दर गलित जनित दर तरल हरिहय नयन नलिनवन रुचि खचित खतल निपतित सुरतरु कुसुम वितति सुरभित रथ पथ!

अर्थ :- सारथी के द्वारा लौटाए गए (मूर्छित) इन्द्र शत्रु मेघनाद और रावण के रथों से आपके तीक्ष्ण बाणों से दस मुख रावण के दसों मुखों के पतन होने पुनः उदित होने और पुनः पतन होने के भय से रावण भय कंपित हो गया था। इंद्र के सहस्त्र नयनों के कमलवन की शोभा से मिश्रित देव पुष्पों की बरसात से फैले हुये सुगंध से आपके रथ का मार्ग सुगंधित हो रहा था।

65 अखिल जगदधिक भुज बल वर बल दश लपन लपन

दशक लवन जनित कदन परवश रजनिचर युवति विलपन वचन समविषय निगम शिखर निकर मुखर मुख मुनि वर परिपणित!

अर्थ :- आप संपूर्ण जगत से अधि बलशाली हैं श्रेष्ठ और बलवान हैं। दसमुख और रावण दसमुखों (सिरों) खंडन से उमड़े निशाचरों की युवतियों के विलापों का विषय आपकी समदर्शिता है। (अर्थात विपक्ष की युवतियाँ आपकी समदर्शिता की दुहाई दे रही हैं। निगम शिखरों वेदान्तों से मुखरित मुखवाले वेदान्तों के वर्णन करने वाले) देवों और मुनियों से सुसज्जित है।

66 अभिगत शतमख हुतवह पितृपति निर्ऋति वरुण पवन धनद गिरिश मुख सुरपति नुति मुदित!

अर्थ :- इन्द्र अग्नि यम निर्ऋति वरूण पवन कुबेर शंकर इत्यादि ब्रह्मा अनंत दिग्पाल देवों की अभिमुख स्तुतियों से आप प्रसन्न किये जाते हैं।

67 अमित मति विधि विदित कथित निज विभव जलधि पृषत लव!

अर्थ :- अपार बुद्धि वाले ब्रह्मा से भी आपके विवुधसागर की बिन्दु का लेस मात्र ही कहा जाता है।

68 विगत भय विबुध परिबृढ विबोधित वीरशयन शायित

वानर पृतनौघ !

अर्थ :- राक्षसों का विनाश होने पर निर्भय देवों के द्वारा आपका वीर शैइया पर सोया हुआ वानर सेना का समूह जिलाया गया था।

69 स्व समय विघटित सुघटित सहृदय सहधर्म चरिणीक !

समय के परिवर्तन से विघटित हुई सहधर्मचारिणी (सीता जी) पुनः हृदय से संघटित हो गई। (सीता जी का पुनः मिलन हो गया)।

70 विभीषण वशंवदीकृत लङ्कैश्वर्य !

अर्थ :- आपने लंका का ऐश्वर्य विभीषण के आधीन कर रखा है।

71 निष्पन्न कृत्य ! ख पुष्पित रिपु पक्ष !

अर्थ :- आपका रण कृत्य समाप्त होने पर शत्रु दल आकाश के पुष्प हो गये। (नहीं बचे)

73 पुष्पक रभस गति गोष्पदीकृत गगनार्णव !

अर्थ :- आपके पुष्पक विमान के तीव्र वेग से आकाश के सिंधु गौ के खुर के समान हो गया।

74 प्रतिज्ञार्णव तरण कृत क्षण भरत मनोरथ संहित सिंहासनाधिरूढ !

अर्थ :- वनवास के प्रतिज्ञा रूपी सागर को पार करने के बाद महान उत्सव हुआ। आप श्री भरत जी के मनोरथ से संबर्द्धित से सिंहासन पर अधिरूढ़ हुये।

75 स्वामिन्! राघव सिंह! हाटक गिरि कटक लडह पाद पीठ निकट तट परिलुठित निखिल नृपति किरीट कोटि विविध मणि गण किरण निकर नीराजित चरण राजीव!

अर्थः- हे स्वामिन! हे राघसिंह हाटक गिरि के मध्य कटि के सदृश्य सुशोभित करोड़ों मोतियों में जड़े हुये मणियों के किरण समूह से आपके चरणारविन्द की आरती की जाती है।

77 दिव्यभौमायोध्याधिदैवत!

अर्थ :- आप दिव्य भूमि अयोध्या वैकुण्ठ लोक के आदि देव हैं।

79 पितृ वध कुपित परशु धर मुनि विहित नृप हनन कदन पूर्व काल प्रभव शत गुण प्रतिष्ठापित धार्मिक राजवंश!

अर्थ :- आपने पितृवध से कुपित परशुराम होने के द्वारा किये गये वधकर्म से पुरवर्तिन नृपों के संख्या से सौ गुणा बढ़ाकर राजाओं के वंश को सुदृढ़ किया है।

80 शुभ चरित रत भरत खर्वित गर्व गन्धर्व यूथ गीत विजय गाथा शत!

अर्थ :- गर्व से मतवाले गंधर्वों का युद्ध पतियों से परम शोभनीय श्री भरत जी की सौंकड़ों विजय गाथाएँ प्रसिद्ध हैं।

81 शासित मधुसुत शत्रुघ्न सेवित!

अर्थ :- मधु के लवण राजा को शासित करने वाले श्री

शत्रुघ्न जी के द्वारा आप सेवित है।

82 कुश लव परिगृहीत कुल गाथा विशेष!

अर्थ:- कुश और लव ने आपकी कुल गाथाएँ की विशेषताएँ गायीं हैं।

83 विधिवश परिणमदमर भणिति कविवर रचित निज चरित निबन्धन निशमन निर्वृत!

अर्थ :- भाग्यवश जिनकी वाणी अमरभारती के रूप में प्रेणित हो गई थी उस कविवर वाल्मीकि मुनि से आपका चरित्र रचा गया है।

84 सर्व जन संमानित!

अर्थ:- आपके चरित्र निबंध को सुनकर सभी जनों के द्वारा परमानंद के साथ सम्मानित है।

85 पुनरुपस्थापित विमान वर विश्राणन प्रीणित वैश्रवण विश्रावित यश:प्रपञ्च!

अर्थ :- अयोध्या पहुँचने के बाद पुन: श्रेष्ठ पुष्पकविमान को उठाकर उन्हें प्रदान कर देने से प्रसन्न हुये कुबेर ने आपका यश प्रपंच विस्तृत किया।

86 पञ्चतापन्न मुनिकुमार संजीवनामृत!

अर्थ :- पंच तत्व प्राप्त हुये मुनि कुमार को जीवित करने वाला अमृत आप हैं।

87 त्रेतायुग प्रवर्तित कार्तयुग वृत्तान्त !

अर्थ :- आप त्रेतायुग में भी सत्ययुग का वृतांत बतलाने वाले हैं।

88 अविकल बहुसुवर्ण हयमख सहस्त्र निर्वहण निज वर्णाश्रमधर्म !

अर्थ :- आपने बहुत विशुद्ध सुवर्णों से हजारों अश्वमेघ यज्ञ किये है। आप सभी को अपने वर्णों और आश्रमों को धर्मों को स्थापित किये हैं।

89 सर्व कर्म समाराध्य ! सनातन धर्म !

अर्थ :- सब कर्मों के द्वारा आप ही आराध्य हैं। आप ही सनातन धर्म हैं।

90 साकेत जनपद जनि धनिक जङ्गम तदितर जन्तु जात दिव्य गति दान दर्शित नित्य निःसीम वैभव !

अर्थ :- साकेत (अयोध्या) के निवासी सज्जन सामान्य जन एवं अन्य जंतु पशु पक्षि एवं प्राणी को दिव्यगति (मोक्ष) देकर आपने नित्य और असीत वैभव का प्रदर्शन किया है।

92 भव तपन तापित भक्तजन भद्राराम !

अर्थ :- संसार के तापों से संतप्त भक्तजन एवं प्रपन्न को कल्याण एवं परमानन्द देने वाले आप हैं।

93 श्रीरामभद्र ! नमस्ते पुनस्ते नमः !

अर्थ :- उपरोक्त गुणें से परिपूर्ण (विभूषित) श्री रामभद्र आप

को प्रणाम है। बारम्बार प्रणाम है।

94 चतुर्मुखेश्वरमुखैः पुत्रपौत्रादिशालिने।
नमः सीता समेताय रामाय गृह मेधिने॥

अर्थ :- ब्रह्मा और शंकर आदि देवों के साथ पुत्रों और पौत्रों के साथ सुसंपन्न गृह मेधी (गृहस्थ)सीता जी के साथ श्री राम जी को नमस्कार है।

95 कविकथकसिंहकथितं कठोरसुकुमारगुम्भगम्भीरम्।
भवभयभेषजमेतत् पठत महावीरवैभवं सुधियः॥

अर्थ :- हे सुधिवरों कवियों और तारकिकों ने सिंह वेदान्ताचार्य से कहा गया संसार के जन्म मरण रूप भय का औषध महावीर श्री राम जी का यह वैभव स्तोत्र स्वध्याय कीजिए।

॥ श्री महावीरवैभवं समाप्तम्॥

कवितार्किकसिंहाय कल्याणगुणशालिने।
श्रीमते वेङ्कटेशाय वेदान्तगुरवे नमः॥
श्रीमते निगमान्तमहादेशिकायनमः

अनन्त श्री विभूषित परमहंस १००८ जगद्गुरु रामानुजाचार्य श्री

पुरुषोत्तमाचार्य जी महाराज

॥ श्रीः ॥

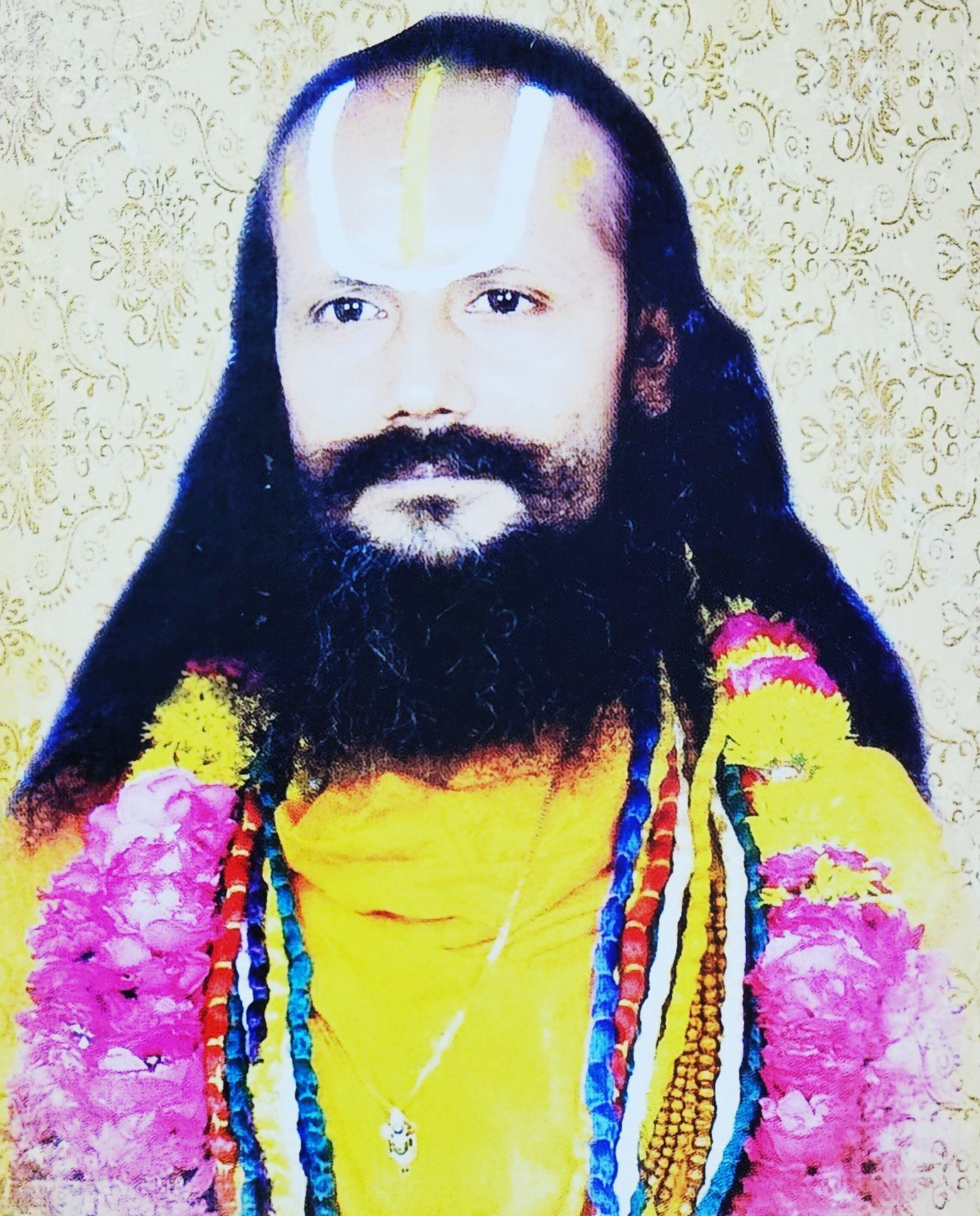

सम्पादक :

जगद्गुरु रामानुजाचार्य स्वामी

श्री अनिरुद्धाचार्य जी महाराज

(श्रीवेदान्तदेशिक पीठ)

श्रीजानकी वल्लभ मंदिर, केशीघाट, वृन्दावन

दूरभाष : 0565-2442349

सारस्वत ग्राफिक्स - 7409475219